3 भारत में जाति व्यवस्था (Caste System in India)

जाति व्यवस्था : अर्थ एवं लक्षण (Caste System : Meaning and Characteristics)

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता है, जो भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification) के एक प्रमुख स्वरूप को परिलक्षित करती है। जाति व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय समाज कुछ जातीय समूहों (Ethnic Group) में वर्गीकृत है और ये समूह सोपानिक (Hierarchical) रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसके अंतर्गत एक जाति समूह एक अंतर्विवाही समूह (Endogamous Group) होता है जिसकी सदस्यता जन्मजात होती है, उसका एक निश्चित व्यवसाय होता है और जो कुछ विशेषाधिकारों और निर्योग्यताओं के साथ खान-पान और सामाजिक सहवास संबंधी निषेधों का पालन करता है।

उपरोक्त विश्लेषणों के आधार पर जाति व्यवस्था के निम्न लक्षणों की चर्चा की जा सकती है:–

1. जाति व्यवस्था सम्पूर्ण समाज को कुछ खण्डों अथवा टुकड़ों में विभाजित करती है और प्रत्येक खण्ड के सदस्यों की स्थिति, भूमिका तथा प्रतिष्ठा जन्म से निश्चित होती है।
2. जाति के विभिन्न खण्डों में ऊंच-नीच का एक निश्चित सोपान होता है। जिसका निर्धारण जन्म के आधार पर होता है।
3. प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय होता है और उस जाति के सभी सदस्य अपने व्यवसाय को ईश्वर प्रदत्त मानकर उसके द्वारा जीविका उपार्जित करना अपना धर्म समझते हैं।
4. प्रत्येक जाति अपने सदस्यों के खान-पान और सामाजिक सहवास (Social Cohabitation) पर कुछ प्रतिबन्ध लगाती है।
5. प्रत्येक जाति में आवश्यक रूप से अन्तर्विवाह के नियम का पालन किया जाता है, अर्थात् कोई भी सदस्य अपनी जाति के बाहर विवाह सम्बंधों की स्थापना नहीं कर सकता।
6. जाति-व्यवस्था में विभिन्न जातियों की सैद्धान्तिक उच्चता व निम्नता के अनुसार कुछ जातियों को विशेष अधिकार प्रदान किए गये, जबकि कुछ जातियों को सामाजिक, धार्मिक व व्यावसायिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

इस प्रकार हिन्दू जाति व्यवस्था ब्राह्मणों की सर्वोच्च स्थिति पर आधारित है और इस व्यवस्था पर प्रश्न करना अधर्म समझा जाता रहा है। जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति आर्थिक रूप से चाहे कितना भी आगे क्यों न बढ़ जाए लेकिन उसकी सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसी आधार पर हिन्दू जाति-व्यवस्था को एक बन्द व्यवस्था के रूप में देखा जाता रहा है।

जाति-व्यवस्था के गुण एवं दोष (Advantages and disadvantages of Caste System)

जाति-व्यवस्था के गुण (Advantages of Caste System)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के एक अनिवार्य अंग के रूप में जाति व्यवस्था में निम्नांकित गुण पाए जाते हैं-

1. जाति व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति को स्थिर सामाजिक पर्यावरण प्रदान करती है। इसी आधार पर कहा जाता है कि "जाति व्यवस्था सामाजिक सुरक्षा का वह आधार है जहां व्यक्ति को रोजगार, आवास और विवाह से सम्बन्धित सुरक्षा प्राप्त होती है, जो व्यक्ति के परिवर्तनशील स्वभाव के कारण सम्भव नहीं हो पाती।"
2. जाति-व्यवस्था एक ही जाति के सदस्यों में सद्भावना एवं सहयोग की भावना विकसित करती है। निर्धन एवं जरूरत मंदों की सहायता करती है। साथ ही जजमानी प्रथा (Jajmani System) द्वारा सभी जातीय समूहों की परस्पर निर्भरता में वृद्धि करती है।
3. यह व्यक्ति के आर्थिक व्यवसाय का निर्धारण करती है। प्रत्येक जाति का एक विशिष्ट व्यवसाय होता है जिससे बच्चों के प्रशिक्षण के अवसर के साथ ही उनका भविष्य भी निश्चित हो जाता है।
4. अन्तर्जातीय विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाकर इसने उच्च जातियों की प्रजातीय शुद्धता (Species Purity) को सुरक्षित बनाए रखा है। इसने सांस्कृतिक शुद्धता (Cultural Purity) पर बल देकर स्वच्छता की आदतों का विकास किया है।
5. चूँकि जाति व्यवस्था व्यक्ति को भोजन, संस्कार और विवाह सम्बन्धी जातिगत नियमों के पालन का आदेश देती है, अत: राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों पर उसके विचार व बौद्धिक क्षमता उसकी जातीय प्रथाओं द्वारा प्रभावित हो जाते हैं।
6. वर्ग-संघर्ष की वृद्धि किए बिना यह वर्ग चेतना का विकास करती है। विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों के लोगों को एक ही समाज में संगठित करने का यह सर्वोत्तम प्रयास था जिसने देश को संघर्षरत प्रजातीय समूहों (Ethnic Groups) में विभक्त होने से बचाया है।
7. यह सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक विभिन्न कार्यों-शिक्षा, शासन, घरेलू सेवा आदि का प्रबन्ध, धार्मिक

विश्वास, 'कर्म सिद्धान्त में विश्वास', की संपुष्टि करता है, जिससे कार्यों के विषम विभाजन को भी संसार का दैवीय विधान समझकर स्वीकार कर लिया जाता है।

8. जाति व्यवस्था में जातीय प्रथाएँ, विश्वास, कौशल, व्यवहार एवं व्यापारिक रहस्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती हैं। इस प्रकार संस्कृति की निरंतरता बनी रहती है।
9. इसने सामाजिक जीवन को राजनीतिक जीवन से पृथक् रखकर अपनी स्वतंत्रता को राजनीतिक प्रभावों से मुक्त रखा है।

जाति-व्यवस्था के दोष
(Disadvantages of Caste System)

एक ओर जहाँ हमारी जाति व्यवस्था में कई गुण पाये जाते हैं वहीं यह कई दोषों से भी युक्त है, जो निम्नवत् हैं-

1. चूँकि व्यक्ति को अपने जातीय व्यवसाय को ही करना पड़ता है, जिसे वह अपनी इच्छा अथवा अनिच्छा के अनुसार बदल नहीं सकता, अतएव इसने श्रम की गतिशीलता को रोका है।
2. इसने अस्पृश्यता (Untouchability) को जन्म दिया है। इसके अतिरिक्त इसने अन्य दोषों, यथा-बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रणाली और जातिवाद को भी जन्म दिया है।
3. इसने एक जाति को दूसरी जाति से पृथक करके तथा उनके बीच किसी भी सामाजिक अन्तर्क्रिया (Social Interaction) को प्रतिबन्धित करके हिन्दू समाज में सद्भावना एवं एकता के विकास को रोका है।
4. जाति व्यवस्था में अनुवांशिक व्यवसाय (Hereditary Occupation) के कारण व्यक्ति अपनी योग्यता व रुचि के अनुसार कोई अन्य व्यवसाय नहीं अपना सकता। यह लोगों की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग नहीं करती, जिससे यह अधिकतम उत्पादन में बाधक सिद्ध होती है।
5. जाति-व्यवस्था देश में राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधक सिद्ध हुई है। जाति-भक्ति की भावना ने दूसरी जातियों के प्रति घृणा उत्पन्न की जो राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए अनुकूल नहीं है।
6. यह राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति में बड़ी बाधक रही है। कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करने के कारण लोग परम्परावादी हो जाते हैं। चूँकि उनकी आर्थिक स्थिति निश्चित होती है, इससे उनमें गतिशीलता के प्रति उदासीनता देखी जाती है।
7. जाति-व्यवस्था अप्रजातंत्रीय (Undemocratic) है क्योंकि इसने सबको जाति, रंग अथवा विश्वास के भेदभाव के आधार पर समानता के अधिकार से वंचित कर दिया है।
8. जाति-व्यवस्था ने जातिवाद को जन्म दिया है। इसमें किसी जाति के सदस्यों में जातिगत भावनाएँ होती हैं और वह न्याय, समता, भ्रातृत्व जैसे स्वस्थ सामाजिक मानको को भूलकर अपनी जाति के प्रति अंधभक्ति प्रदर्शित करते हैं। राजनीतिज्ञ जातिवाद (Politician Casteism) की भावना का, राष्ट्रीय हितों को दांव पर लगाते हुए अपने लाभ-हेतु पक्षपोषण करते हैं।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन एवं इसके कारक
(Change in Caste System and its Causes)

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जाति प्रथा से सम्बन्धित जो परिवर्तन स्पष्ट हो रहे हैं उन्हें प्रमुख रूप से तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है: (क) जाति की संरचना में परिवर्तन, (ख) जातिगत निषेधों में परिवर्तन तथा (ग) जातिगत मनोवृत्तियों में परिवर्तन।

जाति की संरचना में परिवर्तन
(Change in Caste Structure)

परम्परागत भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की सम्पूर्ण संरचना इस प्रकार थी जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च थी। सामाजिक व्यवस्था की रूपरेखा वर्तमान समय में राज्य के द्वारा बनाये गये कानूनों द्वारा निर्धारित होती है। आधुनिक मूल्यों के विकास के साथ ही धार्मिक विश्वास स्वयं ही लौकिक जीवन (Worldly Life) से दूर हट रहे हैं। व्यक्तियों को संविधान द्वारा समानता का अवसर प्रदान किया गया है। अत: व्यक्ति की प्रस्थिति (Status) का निर्धारण आज जातिगत नियमों से न होकर उसकी योग्यता और कुशलता के द्वारा हो रहा है।

स्तरीकरण की व्यवस्था के रूप में जाति के अन्तर्गत सभी जातियों की स्थिति पूर्णतया निश्चित थी, जिसमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन सम्भव नहीं था। वर्तमान समय में इस संस्तरण (Stratification) में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। आज प्रत्येक उप-जाति अपनी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए प्रयत्नशील है। आज एक जाति दूसरी जाति को अपने से उच्च मानकर उसका आधिपत्य मानने को तैयार नहीं है। व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) भी आज जाति की सदस्यता से निर्धारित न होकर उसकी योग्यता, कार्यक्षमता, नेतृत्व अथवा आर्थिक सफलता से निश्चित होती है।

जाति-व्यवस्था की संरचना में जिन व्यक्तियों को अस्पृश्य, दलित अथवा अंव्य मानकर समस्त अधिकारों से वंचित कर दिया गया था, उनकी स्थिति में आज सबसे अधिक परिवर्तन हुआ है। महात्मा गांधी और अम्बेडकर के प्रयत्नों से इन व्यक्तियों को समान अधिकार ही नहीं दिये गए हैं बल्कि सभी सरकारी नौकरियों व राजनैतिक संस्थाओं में उनके लिए स्थान भी आरक्षित कर दिये गये हैं जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति में सुधार हो सके। दलित जातियों को मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार मिल जाने से जाति-व्यवस्था का वह धार्मिक आधार भी समाप्त हो गया जिसके द्वारा सवर्णों और अस्पृश्यों के बीच विभेद को धार्मिक वैधता प्राप्त होती थी।

जातिगत निषेधों में परिवर्तन
(Change in Caste Taboos)

जाति व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व अनुलोम (Hypergamy) और अन्तर्विवाह (Endogamy) की वह व्यवस्था थी, जिससे एक जाति अपनी स्थिति बनाए रखती थी। समकालीन भारत में अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। विधवा विवाह को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बाल विवाह को कानून के द्वारा दण्डनीय अपराध बना दिया गया है जिनके कारण बाल विवाह के स्थान पर विलम्ब विवाह की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। गोत्र (Clan), प्रवर और सपिण्ड जैसी धारणाओं में व्यक्तियों का विश्वास कम होता जा रहा है। कानूनों द्वारा भी ऐसे विवाहों को मान्यता दे दी गई है।

जाति व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक जाति का व्यवसाय निश्चित होता था। जो आनुवांशिक होता था। वर्तमान समय में जाति का यह आधार लगभग समाप्त हो चुका है। नगरों में लगभग सभी व्यावसायिक क्षेत्रों में सभी जातियों के व्यक्ति लगे होते हैं। इस प्रकार आज व्यावसायिक जीवन की गतिशीलता ने सभी जातियों को समान आर्थिक अवसर प्रदान किये हैं।

पारम्परिक जाति व्यवस्था में प्रत्येक जाति अपने से निम्न जाति के सदस्यों द्वारा स्पर्श किये गये भोजन पर प्रतिबन्ध लगाती थी लेकिन वर्तमान समय में जाति का यह आधार लगभग समाप्त ही हो गया है। औद्योगिक नगरों में सैकड़ों व्यक्ति एक साथ कारखानों में काम करते हैं और अवकाश के समय में साथ-साथ बैठकर भोजन करते हैं। होटल, जलपान-गृहों, चाय-पार्टियों तथा उत्सवों में सभी जातियों के व्यक्ति उस भोजन को ग्रहण करते हैं जो अज्ञात व्यक्तियों द्वारा बनाया गया हो, जिनका स्पर्श करना भी जाति-व्यवस्था द्वारा वर्जित था।

जाति व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य था कि वह अपनी जाति के सदस्यों से ही अधिकतम सम्पर्क बढ़ाए, उच्च जातियों की श्रेष्ठता में विश्वास रखे और निम्न जातियों से दूरी बनाए रखे। आज जाति प्रथा का यह आधार पूर्णतया कमजोर पड़ गया है। आज बहुत सी उच्च जातियां अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए उन सभी व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करती हैं जिनकी छाया भी किसी समय अपवित्रता का कारण बन जाती थी।

जातिगत मनोवृत्तियों में परिवर्तन
(Change in Caste Attitudes)

आधुनिक समाज का शिक्षित विवेकशील व्यक्ति जन्म के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारण को रूढ़िगत (Traditional) मानता है। शिक्षा के प्रसार के कारण व्यक्तियों की मनोवृत्ति (Attitude) में तेजी से परिवर्तन हो रहा है और आज किसी भी ऐसे व्यक्ति का सम्मान किया जाता है जो शिक्षित, कुशल और सम्पन्न हो, फिर चाहे उसका जन्म किसी भी जाति में क्यों न हुआ हो।

जाति व्यवस्था आज भी हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही है। लेकिन जाति के इस प्रभाव को केवल राजनीतिक और आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए ही प्रयुक्त किया जा रहा है। आज कोई भी शिक्षित व्यक्ति यह स्वीकार नहीं करता है कि इस व्यवस्था का सम्बन्ध किसी अलौकिक अथवा ईश्वरीय शक्ति से है। इसे एक सामाजिक कुरीति अथवा रूढ़ि के रूप में ही देखा जाता है।

जाति प्रथा को स्थायी बनाए रखने में जाति-पंचायतों तथा जाति-सभाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान था। यह जाति-बहिष्कार, जाति-भोज और तरह-तरह की प्रायश्चितता का भय दिखाकर व्यक्तियों को जाति के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करते रहते थे। आज जातिगत-पंचायतों के पास कोई व्यावहारिक अधिकार नहीं है और अब यह एक निष्क्रिय संस्था मात्र रह गई है, जिसके कारण जाति-प्रथा को सशक्त करने वाला स्थानीय आधार लगभग समाप्त हो गया है।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारक
(Factors of Change in Caste System)

जाति व्यवस्था में होने वाले उपर्युक्त परिवर्तन कई कारकों के संयुक्त परिणाम हैं जिसका वर्णन निम्नांकित रूप से किया जा सकता है–

1. ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद से ही व्यक्ति ईसाई धर्म की एकता और समानता से प्रभावित होने लगे थे। यही भावना थी जिसके फलस्वरूप भारत में सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसने जाति प्रथा का विरोध किया।
2. भारत में औद्योगीकरण के फलस्वरूप व्यक्ति की स्थिति आर्थिक आधार पर निर्धारित होने लगी। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की सामाजिक और धार्मिक स्थिति उसकी जाति और वंश से प्रभावित न होकर उसकी आर्थिक सफलता से प्रभावित होने लगी। परिवहन और संचार के साधनों में तीव्र विकास से सभी जातियों के व्यक्तियों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आने को अवसर मिला जिससे जातीय बन्धन शिथिल पड़ने लगे।
3. भारत में आधुनिक शिक्षा के विस्तार के साथ ही एक बड़े वर्ग ने जाति व्यवस्था जैसी सभी व्यवस्थाओं का विरोध करना आरम्भ कर दिया। शिक्षा से तर्क का महत्त्व बढ़ा और जाति के धार्मिक आधारों को तार्किक दृष्टिकोण से देखा जाने लगा और इन मान्यताओं पर प्रश्न खड़ा किया जाने लगा।
4. स्वतंत्रता आन्दोलन के समय महात्मा गांधी, तिलक, लाला लाजपत राय और बहुत से क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में सभी

धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों और वर्णों के व्यक्तियों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया जिसके परिणामस्वरूप जातिगत दूरी कम हुई।

5. भारत में प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था स्थापित होने के बाद जाति-व्यवस्था की संरचना अपने आप ही विघटित होने लगी क्योंकि प्रजातंत्र का मूलदर्शन समानता, सामाजिक न्याय और धर्मनिरपेक्षता पर आधारित है, जबकि जाति-व्यवस्था जन्म से ही व्यक्ति को भेदभाव, निम्न जातियों के शोषण और धार्मिक कट्टरता की सीख देती है।

6. भारत में जाति-व्यवस्था इसलिए एक प्रभावपूर्ण संस्था बनी हुई थी क्योंकि इसकी उत्पत्ति और नियमों को धर्म और अलौकिक विश्वासों के साथ जोड़ दिया गया था। सम्प्रति (At present) जाति सम्बन्धी धार्मिक विश्वासों में कमी आयी है।

7. परम्परागत रूप से जाति पंचायतों ने जातिगत नियमों को स्थिर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था जो जाति प्रथा के नियमों का उल्लघंन करने पर व्यक्ति को जाति से बहिष्कार करके, आर्थिक जुर्माने से तथा कभी-कभी शारीरिक क्षति पहुँचाकर दण्डित करती थी। वर्तमान समय में जाति पंचायतों का दण्ड देने का अधिकार पूर्णतया समाप्त हो चुका है।

8. जाति को स्थायी बनाने में संयुक्त परिवारों का योगदान सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है। संयुक्त परिवार बच्चे को आरम्भ से ही परम्परागत जीवन व्यतीत करने, कर्मकाण्डों और रूढ़ियों में विश्वास करने तथा जातिगत भेदभाव को सिखाने का केन्द्र-स्थल रहे हैं। औद्योगीकरण तथा व्यवसायों की विविधता के कारण संयुक्त परिवारों के विघटन ने जाति व्यवस्था को कमजोर किया।

9. आधुनिक शिक्षा के प्रसार और सुधार आन्दोलनों के कारण स्त्रियों की स्थिति में तेजी से सुधार हो रहा है, वे स्वयं उन जातिगत नियमों का विरोध करने लगी हैं जिनके कारण उनका जीवन पशु-तुल्य हो गया था।

10. स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जितने भी सामाजिक अधिनियम बने, उनमें से अधिकतर विधान जाति प्रथा की सैद्धान्तिक मान्यताओं के विरुद्ध हैं। 1954 के विशेष विवाह अधिनियम ने अन्तर्विवाह प्रतिबन्धों पर प्रभाव डाला। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 के द्वारा अस्पृश्यता अथवा इससे सम्बन्धित सभी प्रकार के आचरण को अपराध घोषित कर दिया गया। सन् 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा मिताक्षरा और दायभाग के भेद को समाप्त करके स्त्रियों को पुरुषों के समान ही साम्पत्तिक अधिकार दिए गए। इन सभी अधिनियमों के कारण एक ऐसे समतामूलक पर्यावरण का निर्माण हुआ जिसमें जाति प्रथा के स्थायित्व पर कठोर आघात हुआ क्योंकि जाति व्यवस्था अपनी प्रकृति में असमानताओं पर आधारित थी।

मूल्यांकन (Evaluation)

जाति व्यवस्था में निश्चित तौर पर अनेक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं, परन्तु इन तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति की वंशानुगत सदस्यता (Hereditary Membership), संस्तरण तथा इसके अंतर्विवाह संबंधी पक्ष में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। दूसरी ओर, आधुनिकीकरण के प्रभाव ने निम्न जातियों को प्रस्थिति सुधार हेतु अभिप्रेरित किया है। फलतः ये जातियां, जाति को आधार के रूप में इस्तेमाल करते हुए ऊर्ध्वमुखी सामाजिक गतिशीलता (Upward Social Mobility) हेतु उन्मुख हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय जाति व्यवस्था आधुनिक परिवर्तनों के साथ अभी भी अपनी निरंतरता बनाए हुए है अर्थात् आधुनिक भारत में जाति व्यवस्था एक साथ मजबूत एवं कमजोर दोनों हुई है।

जाति व्यवस्था की निरन्तरता एवं इसके कारक (Continuity of Caste System and its Causes)

यह देखा जाता है कि पारंपरिक सामाजिक संगठन में अनेक परिवर्तन आए हैं, जिसका एक उदाहरण जाति व्यवस्था है। फिर भी इस संगठन की भारतीय समाज में निरन्तरता बनी हुई है तथा यह पुराने व कुछ नये प्रकार्य (Function) निभा रहा है।

सामाजिक क्षेत्र में निरंतरता (Continuity in the Social Sector)

लखनऊ में रिक्शा चालकों के अध्ययन में पाया कि वे भिन्न-भिन्न जातियों के थे। रिक्शाचालक काम के समय जाति सम्बन्धी निषेधों की परवाह किए बिना एक-दूसरे के साथ अंतःक्रिया (Interation) करते थे। तथापि, शाम को जब ये रिक्शाचालक घर जाते थे तो जाति सम्बन्धी सभी धार्मिक रीतियों का पालन करते थे। उनके रिश्तेदार उन्हीं की जाति के थे तथा वे अपनी ही जातियों मे विवाह करते थे। जाति व्यवस्था की खान-पान सम्बन्धी व वैवाहिक नियम संबंधी दो प्रमुख विशेषताओं में से खान-पान सम्बन्धी विशेषता तो लुप्त हो चुकी है, परन्तु सभी परिवर्तनों के बाद भी अपनी ही जाति में विवाह के नियम अभी भी बने हुए हैं।

आर्थिक क्षेत्र में निरन्तरता (Continuity in the Economic Sector)

जाति व्यवस्था में विशिष्ट जाति समूहों के लिए विशिष्ट व्यवसाय नियत किये गए, जिनका सामाजिक सोपान में एक विशिष्ट स्थान था। उच्च जाति के व्यवसाय पवित्र माने जाते थे, जबकि निम्न जातियों के व्यवसाय, अपवित्र माने जाते थे। अंग्रेजों के आगमन से नए आर्थिक अवसर खुले और जन साधारण के लिए

उपलब्ध हुए। अर्थव्यवस्था की वृद्धि के कारण आर्थिक सम्बन्ध वंशानुगत सामाजिक स्थितियों के स्थान पर बाजार की दशाओं से निर्धारित होने लगे।

व्यावसायिकतावाद के प्रभाव के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था वृहत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का भाग बन जाती है। अंग्रेजी शासन में परिवर्तित राजनैतिक वातावरण ने गाँव के पारम्परिक जाति पदक्रम और भूस्वामित्व संरचना को धक्का पहुँचाया। तथापि, सामाजिक स्थितियों में आंतरिक अदल-बदल हुआ परन्तु सम्बन्धित समूहों में जाति व्यवस्था अभी भी राजनैतिक सम्बन्ध निर्धारित करती रही तथा आर्थिक प्रस्थितियों को प्रतिबिंबित करती रही। इस अर्थ में, व्यापक परिवर्तनों के बावजूद जाति की निरंतरता अभी भी बनी हुई है।

आज जाति की निरंतरता, एक अन्य रूप में देखी जा सकती है कि जब सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक व शैक्षणिक परिवर्तनों की नई शक्तियाँ उदित हुई, तो इन परिवर्तनों से सबसे पहले लाभ उठाने वाली उच्च जातियाँ, जैसे कि ब्राह्मण, राजपूत व वैश्य थीं, जो कि पहले से ही शक्तिशाली थी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रति सबसे पहले ब्राह्मण वर्ग चैतन्य हुआ और इसलिए उसने राजनैतिक व प्रशासनिक शक्ति का लाभ उठाया। यही स्थिति वाणिज्यिक क्षेत्र में भी देखने को मिलती है। बिड़ला, डालमिया आदि जैसे बड़े व्यापारी घराने भी पारम्परिक वाणिज्यिक जातियों के हैं। आधुनिक बैकिंग तथा वाणिज्य के क्षेत्र में भी दक्षिण के चेट्टियार जैसी जातियों ने अपने आप को स्थापित कर लिया, जो कि उनके पारम्परिक व्यवसाय के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है।

राजनीतिक क्षेत्र में निरन्तरता
(Continuity in the Political Sector)

ग्रामीण भारत में सत्ता संरचना के निर्धारण में प्रभुत्वशील जाति एक महत्वपूर्ण घटक थी। सभी प्रभुत्वशील जातियाँ अनुष्ठानिक (Ceremonial) रूप से श्रेष्ठ नहीं थी बल्कि प्रभुत्व भूमि स्वामित्व, राजनैतिक शक्ति, संख्यात्मक शक्ति आदि से जुड़ा हुआ था। पश्चिमी एवं उत्तरी भारत के कुछ क्षेत्रों में यह देखने में आता है कि प्रभुत्वशील कृषक जातियों के पास भूमि स्वामित्व व राजनैतिक शक्ति भी थी।

बाजार की अर्थव्यवस्था के उदय के साथ जाति मुक्त व्यवसायों के प्रारम्भ तथा जाति समूहों के सक्रिय होने आदि कारणों से जातियों की पारंपरिक राजनैतिक भूमिका में ह्रास हुआ है। फिर भी, हम जाति को राजनैतिक रूप से महत्वपूर्ण पाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् अधिकांश स्थानों पर अछूतों की निम्न जातियाँ, स्थानीय प्रभुत्वशील उच्च जाति के ठाकुरों के विरोध में एकजुट हो गई। ठाकुर (राजपूत) जमींदार पारम्परिक न्यायकर्ता थे तथा निम्न जातियों के भूतपूर्व मालिक थे। अतः जाति, जो कि एक विभाजक थी, इन नई परिस्थितियों में अपने आपको एकता के कारक के रूप में ढाल लिया। ये जातिगत गठबंधन, केवल राजनैतिक लाभ के लिए ही नहीं, अपितु भौतिक कल्याण व सामाजिक प्रस्थिति (Social Status) के लिए भी स्थापित हुए। अतः भारतीय समाज की गतिशीलता वास्तविक रूप में जातिगत परिवर्तनों के साथ-साथ चली है। परिवर्तन की शक्तियों से अनुकूलन की विशेषता, पहले भी जाति का महत्वपूर्ण लक्षण रही है। पहले की तरह आज भी परिवर्तन का यह विन्यास इस व्यवस्था की निरंतरता का एक प्रमुख तत्व है।

जाति व्यवस्था की निरन्तरता के कारक
(Factors for the Continuity of the Caste System)

जाति व्यवस्था में निरंतरता के कारणों की चर्चा दो संदर्भों में की जा सकती हैं-

1. अनुकूलन के संदर्भ में, तथा
2. जाति व्यवस्था के समकालीन प्रकार्यों के संदर्भ में।

1. अनुकूलन के संदर्भ में (In terms of adaptation)

पणिक्कर ने कहा है कि-"जाति रबर के बने ऐसे तंबू के रूप में है जो सभी समूहों का समावेश अपने अंदर कर लेता है।"

इस संदर्भ में यदि भारत में जाति व्यवस्था पर विचार करें तो इसमें अनुकूलन की अद्भुत क्षमता दृष्टिगत होती है। अनुकूलन की यह क्षमता जाति व्यवस्था का ऐतिहासिक लक्षण रहा है और इसने बौद्ध, जैन, इस्लाम धर्मों, संस्कृतिकरण और आधुनिकीकरण जैसी तमाम परिवर्तनकारी शक्तियों के साथ अनुकूलन किया है और अपने परिवर्तित स्वरूप के साथ अभी भी विद्यमान है।

2. समकालीन प्रकार्यों के संदर्भ में (In the context of Contemporary Functions)

जाति व्यवस्था के समकालीन प्रकार्य भी इसकी निरंतरता के लिए उत्तरदायी हैं, जैसे-

1. जाति सामाजिक गतिशीलता को संभव एवं व्यावहारिक बनाती है जो दो रूपों में स्पष्ट होता है प्रथम 'संस्कृतिकरण' के रूप में और द्वितीय शक्ति अर्जन के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन के आधार के रूप में। संस्कृतिकरण द्वारा निम्न स्तर की जातियों ने उच्च स्तर की प्रभुजातियों की जीवनशैली का अनुसरण किया और जातीय संस्तरण (Caste Stratification) में अपनी उच्च स्थिति का दावा किया। ऐसे समूहों को जाति संस्तरण में उच्च स्थिति भी प्राप्त हुई। इस प्रकार इन समूहों को संतुष्ट करते हुए जाति ने अपनी निरन्तरता बनाये रखी। समकालीन भारत में जहाँ आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति अधिक महत्वपूर्ण है वहां जातियां संगठित होकर इनको प्राप्त करने का प्रयास कर रही हैं। जहाँ एक ओर अपने आर्थिक-सामाजिक तथा राजनीतिक हितों के साधन के लिये जाति दबाव समूह के रूप में कार्य कर रही है। वहीं, चुनाव में अपने प्रतिनिधियों को जिताने के लिए एक जाति के लोग एकताबद्ध हो रहे हैं।

2. लोकतांत्रिक व्यवस्था में 'जाति' राजनीतिक दलों द्वारा मतदाताओं को लामबंद करने हेतु आधार का काम करती है। आज चुनावी समीकरण में जाति के पक्ष को ध्यान में रखा जाता है। विभिन्न जातियाँ अपने हितों को देखते हुए संगठनों का निर्माण करती हैं और अपने सदस्यों को किसी विशेष पार्टी को मत देने के लिये प्रेरित करती हैं। जातियों की राजनीतिक भागीदारी प्राप्त करने के इस तरीके ने जातीय चेतना (Caste Consciousness) को मजबूती प्रदान की है और जातियों को संगठित होने का नया आधार प्रदान किया है। लोकतंत्रीय व्यवस्था में अपनी जाति की भागीदारी सुनिश्चित कराने के प्रयास ने भी जाति को मजबूत बनाकर इसकी निरंतरता को बनाए रखने में सहायता प्रदान की है।
3. जातीय आधार पर निर्मित संगठनों द्वारा अनेक लोक कल्याणकारी कार्य किये जाते रहते हैं। उनके द्वारा किये जाने वाले यह कार्य एक तरफ तो उनकी जाति के लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हैं तो वहीं दूसरी तरफ उनमें अपनी जाति के प्रति विश्वास की भावना पैदा कर जाति को मजबूत बनाते हैं। जाति के यह कल्याणकारी कार्य, राज्य द्वारा प्रायोजित कल्याणकारी कार्यों के विकल्प के रूप में होते हैं जो केवल अपनी जाति के लिए होते हैं और इस प्रकार ये जातीय समूह में 'हम की भावना' को मजबूत बनाते हैं और जाति की निरंतरता में सहायक होते हैं। अपनी जाति के सदस्यों के लिये छात्रावास, अस्पताल एवं धर्मार्थ संस्थाएं बनाकर संगठन अपनी जाति की निरंतरता बनाये हुए हैं।
4. व्यक्ति द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद की सहायता लेना उसके लिये लाभकारी होता है। राजनीतिक या आर्थिक स्वार्थों की सिद्धि के लिये कुछ व्यक्ति कभी-कभी अपनी जाति को आधार बनाते हैं और अपने समूह के लोगों में जातीय भावना पैदा करते हैं। व्यक्ति जातीयता के आधार पर अपनी जाति को संगठित कर दबाव समूह (Pressure Group) के रूप में उसका प्रयोग करते हैं और अपने व्यक्तिगत हितों को पूरा करते हैं। इस प्रकार के प्रयास जातिवाद की भावना पैदा करते हैं। इसकी प्रतिक्रिया में अन्य जातियां भी संगठित होती हैं और जाति मजबूत होती है और इस प्रकार जाति निरंतरता बनी हुई है।
5. वैश्वीकरण और संचार क्रांति के दौर में जाति व्यक्ति के समक्ष पहचान के संकट (Identity Crisis) का समाधान प्रस्तुत करती है। पहचान के संकट का सामना कर रहा व्यक्ति वैश्विक भीड़ में खो जाने के भय से अपने नृजातीय मूल (Ethnic root) की तलाश करता है। जाति व्यवस्था अपने सदस्यों को एक सुरक्षित पहचान देती है जिसे जीवनपर्यन्त कोई शक्ति नहीं बदल सकती। अपनी पहचान को सुरक्षित रखने की यह मानसिकता भी जाति को मजबूत करते हुए इसको निरंतरता प्रदान कर रही है।

मूल्यांकन (Evoluation)

तमाम परिवर्तनों के बावजूद समकालीन भारत में जाति प्रथा अपने अनुकूलन की अद्भुत क्षमता एवं समकालीन प्रकार्यों (Contemporary Function) के कारण अपनी निरंतरता को बनाए हुए है। आज भी भारत के ग्रामीण समाजों में व्यक्ति की पहचान में उनकी जाति की भूमिका महत्वपूर्ण बनी हुई है। आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की होड़ में विभिन्न जातियों में सावयवी एकता (Organic Unity) (परंपरागत जजमानी व्यवस्था के रूप में पाई जाने वाली एकता) की जगह प्रतिस्पर्धात्मक एकता (Competitive Unity) का विकास हुआ है। शहरों में भी अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद एक प्रमुख क्रियाविधिकी के रूप में क्रियाशील है। मध्य बिहार एवं उत्तर प्रदेश में हाल के वर्षों में हुए जातीय दंगे, नरसंहार तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश में अंतर्विवाह करने वाले जोड़ों की नृशंस हत्याएं जाति की मजबूत होती प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। आज राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने एक साधन के रूप में जाति के महत्व को काफी बढ़ा दिया है।

अत: निष्कर्ष है कि आज तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति अपनी निरंतरता को बनाये हुए है अर्थात् जाति एक साथ कमजोर (कुछ क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन के संबंध में) और मजबूत (कुछ क्षेत्रों में विद्यमान निरंतरता के संबंध में) दोनों हुई है।

प्रभुजाति की अवधारणा (Concept of Dominant Caste)

जाति प्रधान भारतीय समाज में ग्रामीण शक्ति संरचना के विश्लेषण के क्रम में श्रीनिवास ने प्रभुजाति की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार जाति के लक्षणों से अधिक महत्वपूर्ण जातियों के आसपास उभरने वाले संबंधों की संरचना है और इन संबंधों में प्रभुत्व रखने वाली जाति को 'प्रभुजाति' कहा जाता है जिनके पास गांव की शक्ति का केंद्रीकरण होता है और गांव की अन्य जातियां उनके प्रभाव में होती हैं।

श्रीनिवास का मानना है कि परिवर्तनशील भारतीय ग्रामीण समाज की शक्ति संरचना (Power Structure) में किसी जाति का प्रभुत्व केवल कर्मकांडीय प्रस्थिति (Ritual Status) पर निर्भर नहीं करता है बल्कि सत्ता, संपदा आदि भी इसके प्रमुख निर्धारक तत्व हो गये हैं। इस संदर्भ में उन्होंने प्रभुजाति की प्रभुत्वशीलता को निर्धारित करने वाले प्रमुख तीन कारकों की चर्चा की है–

1. संख्यात्मक बहुलता अर्थात् उसकी संख्या आसपास की अन्य जातीय समूहों से अधिक हो।
2. भू-स्वामित्व अथवा आर्थिक संपन्नता अर्थात् उस जाति के पास अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक भूमि पर अधिकार हो और आय के अन्य स्रोत भी अधिक हों।
3. राजनीतिक शक्ति अर्थात् उस जाति के सदस्यों के पास राजनीतिक पहुँच हो।

भारत के ग्रामीण समुदाय में उपरोक्त तीनों शक्ति रखने वाली जाति प्रभुजाति होती है। **श्रीनिवास** के अनुसार आज किसी भी जाति की कर्मकांडीय प्रस्थिति उसके प्रभुत्वशीलता के निर्धारण हेतु महत्वपूर्ण आधार नहीं रह गयी है। फिर भी अपेक्षाकृत उच्च कर्मकांडीय प्रस्थिति किसी जाति को प्रभुजाति बनने में सहयोग देती है। श्रीनिवास ने इस तथ्य की पुष्टि हेतु रामपुरा गाँव के अपने अध्ययन का उदाहरण दिया है जहाँ ब्राम्हण, किसान एवं अस्पृश्य सहित अनेक (ओक्कालिंगा- किसान) जातियाँ रहती हैं। ओक्कालिंगा की कर्मकांडीय प्रस्थिति ब्राम्हणों से निम्न है, परंतु गाँव की लगभग 80% भूमि का स्वामित्व ओक्कालिंगा के पास है, ओक्कालिंगा संख्या में भी अधिक हैं और ग्रामीण मामलों में राजनीतिक प्रभाव भी रखते हैं फलस्वरूप निम्न कर्मकांडीय प्रस्थिति के बावजूद ओक्कालिंगा रामपुरा की प्रभुजाति है।

नवीन परिवर्तनों के संदर्भ में श्रीनिवास ने अपने बाद के लेखनों में यह स्वीकार किया है कि भारत में प्रभुजाति के अब कई अन्य निर्धारक कारक भी हो गए हैं (जैसे- पश्चिमी शिक्षा, आरक्षण की व्यवस्था, प्रशासन में निम्न जाति के लोगों की उच्च पदों पर नौकरियाँ और आय के अन्य नगरीय स्रोत आदि)। स्वतंत्रता के बाद से वयस्क मताधिकार तथा पंचायती राज की शुरूआत ने निम्न जातियों विशेषत: हरिजनों में आत्म सम्मान एवं शक्ति की नवीन भावना का संचार किया है। इन जातियों को प्राप्त आरक्षण और इन जातियों के लिए निर्मित संगठन की भूमिका भी इनके प्रभुत्व के निर्धारण में महत्वपूर्ण हो गई है। साथ ही पुरातन एवं नवीन प्रभुजातियों के मध्य संघर्ष भी आज की महत्वपूर्ण घटना है। यद्यपि इन परिवर्तनों के बावजूद श्रीनिवास ने यह स्वीकार किया है कि अत्यधिक पिछड़े इलाकों में परंपरागत प्रभुजाति के प्रभुत्व को समाप्त करना एक कठिन कार्य है परंतु यह भी सत्य है कि उनके स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है और पुरातन प्रभुजाति की प्रभुता का ह्रास हो रहा है।

इस प्रकार प्रभुजाति की प्रकृति में परिवर्तन और जातीय सोपान (Caste Hierarchy) में मध्य एवं निचले स्तर की जातियों का प्रभुजाति के रूप में उभार वर्तमान ग्रामीण भारत की महत्वपूर्ण घटना है और वैश्वीकरण एवं तकनीकी विकास के बावजूद ग्रामीण शक्ति संरचना में जाति एक महत्वपूर्ण घटक बनी हुई है। अत: वर्तमान ग्रामीण शक्ति संरचना के विश्लेषण में श्रीनिवास का यह विचार एक दृष्टिकोण प्रदान करता है और इस रूप में आज भी महत्वपूर्ण है।

जजमानी प्रणाली (Jajmani System)

जजमानी प्रणाली हिन्दू जातीय प्रणाली का सामाजिक-आर्थिक आधार रहा है और भारत में कृषिक सामाजिक संरचना का अंतर्निहित हिस्सा है। जजमानी प्रणाली नामक पद विलियम वाइजर की देन है।

जजमानी प्रणाली के अंतर्गत गाँव में हरेक जातीय समूह को अन्य जातियों के परिवारों को कुछ मानकीकृत सेवाएँ (Standardised Services) देनी होती हैं। आमतौर पर इस मुहावरे का प्रयोग भू-स्वामी उच्च जातियों और भूमिहीन सेवक जातियों के बीच माल और सेवाओं के लेनदेन के सूचक के रूप में किया जाता है। ये जातियाँ हमेशा ही एक व्यवसायिक परंपरा निभाने के कारण व्यवसायिक रूप से निपुण हो जाती हैं, इसलिए इन्हें कारीगर जातियों के रूप में भी जाना जाता है। लुहार, सुनार, बुनकर, तेली, मोची, नाई, धोबी, गायक जैसी कारीगर जातियाँ और व्यवसायिक निपुणता वाले अन्य कई समूह व खेतिहर मजदूरी करने वाले पारंपरिक भूमिहीन अछूत जातियों के लोग 'सेवक जातियों' में आते हैं। इन्हें कमीन, प्रजन और देश के विभिन्न हिस्सों में कई अन्य नामों से पुकारा जाता है। भू-स्वामी उच्च जातियों को मोटे तौर पर जजमान (संरक्षक) कहा जाता है। पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले ये सेवा आधारित संबंध जजमानी-प्रजन संबंध कहलाते हैं।

जजमानी प्रथा बुनियादी तौर पर उत्पादन माल एवं सेवाओं के वितरण की कृषि आधारित प्रणाली है। जजमानी संबंधों के माध्यम से यह कारीगर जातियाँ भू-स्वामी प्रभुतासंपन्न जातियों के संपर्क में आती हैं। भू-स्वामी जातियाँ अपनी कारीगर अथवा सेवक जातियों के प्रति उच्चता एवं 'पालनहार' का सा रूख अपनाती हैं।

इस प्रणाली के अंतर्गत गाँव में रहने वाले हरेक जाति समूह को अन्य जातियों के परिवारों को एक निश्चित मानदंड के अनुसार सेवाएँ प्रदान करनी होती है। यह प्रणाली वितरणपरक व्यवस्था हैं जिसके अंतर्गत उच्च जातियों के भू-स्वामी परिवार जिन्हें जजमान कहा जाता है, उन्हें विभिन्न निम्न जातियों द्वारा सेवाएँ एवं उत्पाद उपलब्ध कराए जाते हैं। इस प्रकार यह प्रणाली भारतीय कृषि आधारित गाँव में श्रम के कार्यानुसार विभाजन को स्पष्ट करती है जिसमें भूमिका संबंधों और भुगतान की श्रृंखला बनाती है। यह व्यवस्था परंपरा के अनुसार ही चलती रही है और आपसी विश्वास तथा एक-दूसरे पर निर्भरता इसका सातत्य बनाए हुए है। इसलिए इसे भारतीय कृषिक व्यवस्था में जाति पर आधारित कार्यात्मक अंतरनिर्भरता (Functional Inter-dependence) की योजना भी कहा जा सकता है।

जजमानी रिश्ते अटूट होते हैं। जजमानी अधिकार को पिता से पुत्र के हाथ में जायदाद के हस्तांतरण का एक प्रकार भी माना जा सकता है। यह संबंध एक प्रकार से स्थानीय परंपराओं से ही अधिकतर संचालित होते हैं। कुल मिलाकर जजमानी प्रणाली में आधिपत्य, शोषण एवं संघर्ष प्रमुख तौर पर निहित हैं। भू-स्वामी प्रभुतासंपन्न संरक्षकों तथा उनकी सेवा करने वाले गरीब कारीगरों और भूमिहीन मजदूरों के बीच सत्ता के प्रयोग में भारी खाई विद्यमान रही हैं।

जजमानी प्रणाली की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जजमानी संबंधों का संचालन हालांकि ग्रामीण स्तर पर ही होता है फिर भी अक्सर वे किसी एक गाँव तक ही सीमित नहीं रहते क्योंकि सभी गाँवों में सभी कारीगर जातियाँ नहीं होती इसलिए

कारीगर जातियों की सेवाएँ अन्य गाँवों से भी अक्सर उधार ली जाती है। इसके अलावा सुनारों, लुहारों और बढ़ई जैसी कारीगर जातियों के लिए एक ही गाँव से पूरे साल रोजगार योग्य काम जुटाना संभव नहीं है। इसलिए ऐसी जातियाँ एक सीमित क्षेत्र में कई गाँवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। उपसंहार के रूप में यह कहा जा सकता है कि जजमानी प्रथा युगों पुरानी सामाजिक संस्था है जो भारतीय गांवों में प्रचलित अंतरजातीय तथा अंतरपारिवारिक सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक और धार्मिक संबंधों को परिलक्षित करती है। यह भारत में कृषि के सामाजिक संगठन के सबसे महत्वपूर्ण अवयवों में शामिल है।

जजमानी प्रथा का पतन (Decline of Jajmani System)

भारतीय अर्थव्यवस्था के धीरे-धीरे हुए आधुनिकीकरण के समांतर जजमानी प्रथा का भी पतन हो रहा है लेकिन आजादी के बाद ही अवध में इस प्रथा का तेजी से पतन हुआ है। मोटे तौर पर जजमानी प्रथा के पतन को निम्नलिखित शीर्षकों में बताया जा सकता है।

1. सरकार (राज्य) की भूमिका
2. प्रौद्योगिकी अन्वेषणों और औद्योगीकरण की शुरूआत
3. दलितों और पिछड़ी जातियों की राजनैतिक लामबंदी

पारंपरिक रूप में जजमानी प्रथा पर चलने वाले गांवों की अर्थव्यवस्था प्रारंभिक स्तर पर गुजर-बसर की अर्थव्यवस्था थी, जिसका लक्ष्य स्थानीय आबादी की उपभोग संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। स्थानीय आत्मनिर्भरता और श्रम एवं पूंजी में ठहराव के कारण कृषि का व्यवसायीकरण और पूंजीवादी रूपांतरण नहीं हो पाया स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जानबूझकर नियोजित ढंग से यह प्रयास किया गया कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय मंडियों से जोड़ा जाये। इस कार्य को सुचारू बनाने के लिए सरकार ने यातायात एवं संचार श्रृंखलाओं के विस्तार के लिए बड़े पैमाने पर पूंजी निवेश किया। सरकार की नीतियों से ग्रामीण भारत में अर्थव्यवस्था का तेजी में मौद्रीकरण हुआ। बढ़ती हुई आबादी का पेट भरने के लिए सरकार की कार्यसूची में कृषि में उत्पादकता का सवंर्द्धन प्राथमिकता का विषय था।

स्वतंत्रता के तत्काल बाद अपनाए गए नियोजित विकास की प्रक्रिया द्वारा कृषि क्षेत्र में पूंजीवादी रूपांतरण (Capitalist Transformation) हुआ। इसके अलावा सरकार ने ऋण सुविधाएँ, प्रौद्योगिक जानकारी, खाद, सिंचाई और अधिक उपजाऊ बीज आदि उपलब्ध कराने की भी पहल की। इसके कारण भू-स्वामी वर्ग की मानसिकता में आमूलचूल परिवर्तन हुआ और बाजार की शक्तियों के आने के कारण उन्हें सदियों पुरानी जजमानी प्रथा को जिन्दा रखने के बजाय उन्हें बिक्री के लिए अधिक उत्पादन करने का प्रोत्साहन मिला। इससे भू-स्वामी वर्गों तथा खेतिहर मजदूरों एवं कारीगरों के बीच ठेके पर आधारित संबंधों को बढ़ावा मिला। पारंपरिक अनौपचारिक संबंधों की जगह औपचारिक ठेकेदारी दायित्वों के अनुरूप औपचारिक संबंधों की शुरूआत होने लगी।

प्रौद्योगिकी अन्वेषणों और औद्योगीकरण से एक स्थिति ऐसी आई कि जिसमें कार्यात्मक अंतरनिर्भरता की कोई संभावना ही नहीं बची। मशीनों से तैयार सामानों के बाजार पर छा जाने और दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँच जाने के कारण ग्रामीण कारीगरों को सीधे यंत्रों से स्पर्धा करने पर मजबूर होना पड़ा।

दाढ़ी बनाने के लिए सेफ्टी रेजर की विश्वसनीयता बढ़ने और उसके कारण उसका प्रयोग बढ़ने की वजह से अपने हाथ से दाढ़ी बनाने का रिवाज चल निकला और गांव के नाई का काम घट गया। स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के आविष्कार से गांव के कुम्हार का महत्व घटा और गांव में बरमें यानि हैंडपंप लग जाने के कारण उच्च जातियों की कहारों (पानी खींचकर उसे घरों तक पहुँचाने वाले) पर निर्भरता कम हुई। इस सबके कारण अधिकतर कारीगर जातियाँ बेरोजगार हो गयीं। इनमें से कई जातियों ने बाजार का रूख किया अथवा अपनी सेवाएँ औपचारिक आर्थिक लेनदेन के अंतर्गत नकद भुगतान के बदले देनी शुरू कर दी। इसके साथ ही सेवक जातियों के नए उभरते शहरी केन्द्रों और औद्योगिक बस्तियों में पलायन का सिलसिला शुरू हो गया। गांव में छूट जाने वाले लोगों ने भू-स्वामी अभिजात की जमीनों पर दिहाड़ी मजदूरी अपना ली। इस प्रकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था अब अधिकांश शहरी और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से एकीकृत होने लगी।

आजादी से पहले राष्ट्रवादी आंदोलन ने सामाजिक समानता के बारे में एक सैद्धांतिक और लगभग अर्द्धवैचारिक प्रतिबद्धता दिखाई दी थी। कमजोर वर्गों-दलित, आदिवासियों और पिछड़ी जातियों से समतामूलक (Egalitarian) और अन्याय और शोषण मुक्त नए समाज की स्थापना का वायदा किया गया था। उस दृष्टि से पिछड़ी जातियों के आंदोलनों ने भारत के दक्षिणी और पश्चिमी क्षेत्रों में अपना रंग जमा लिया था। संविधान के लागू हो जाने से सरकार उनके कल्याण और सशक्तिकरण के लिए प्रतिबद्ध हो गयी।

वर्तमान भारतीय समाज में एक अत्यंत स्थायी महत्व का परिवर्तन दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों में अपनी पहचान की नई भावना का प्रस्फुटन है। भारतीय जनसंख्या के पिछड़े वर्गों का लोकतंत्र में अपनी हिस्सेदारी के लिए संघर्ष और देश के विभिन्न हिस्सों में उनकी राजनैतिक लामबंदी शोषणमूलक जजमानी प्रथा के लिए गंभीर चुनौती साबित हुई। जजमानी प्रभाव भू-स्वामी उच्च जातियों की पारंपरिक कृषि पर निर्भर अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण के साथ उनके एकाधिकारवादी अधिकार पर आधारित थी। पिछड़े वर्गों द्वारा नए आत्मविश्वास और लोकतंत्र में हिस्सेदारी के लिए उनके संघर्ष में जजमानी प्रथा पतन के गर्त में जा रही है। इसके बावजूद इस तर्क में भी दम दिखाई दे रहा है कि कमजोर वर्गों द्वारा इस प्रकार प्राप्त किए गए अधिकारों का नई आर्थिक नीतियों और वैश्वीकरण से फिर हनन होने के आसार बन रहे हैं।

भारत में जाति व्यवस्था : समकालीन मुद्दे (Caste System in India : Contemporary Issues)

भारत में अस्पृश्यता (Untouchability in India)

सोपान क्रम में विभाजित भारतीय हिंदू सामाजिक संगठन में सबसे निचले स्तर पर अवस्थित वह जाति जिन पर विभिन्न निर्योग्यताएँ एवं प्रतिबंध (Disabilities and Restrictions) आरोपित कर सम्पूर्ण समाज से पृथक अमानवीय जीवन यापन हेतु विवश किया जाता रहा है, अस्पृश्य हैं।

इन जातियों को जन्मजात अपवित्र मानते हुए इनपर कई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक प्रतिबंध लगाए गए। अस्पृश्य जातियों को गाँव के दक्षिण दिशा में निवास करने, मुख्य मार्ग से आवागमन न करने, प्रात: एवं सांयकाल घर से नहीं निकलने, सार्वजनिक कुँओं, तालाबों, जलाशयों आदि का प्रयोग नहीं करने, मंदिरों एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश नहीं करने तथा न्यायालय में दूर से अपनी बात कहने आदि के लिए बाध्य किया गया। इसके अतिरिक्त इन्हें पक्के ईंट के मकान में रहने, संस्कृत बोलने या सुनने, इस जाति की महिलाओं के आभूषण पहनने आदि पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस जाति पर सभी निर्योग्यताएँ कठोरता से लागू की जाती थी तथा इसके उल्लंघन पर इन्हें मृत्युदंड तक की सजा दी जाती थी।

अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु किए गए प्रयास (Effort Made to Eradicate Untouchability)

भारत में अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु लंबे समय से ही विभिन्न प्रयास किए जाते रहे हैं। मध्य काल में विभिन्न भक्ति एवं समाज सुधार आंदोलन इस काल के प्रमुख आंदोलन हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृतिकरण, धर्मान्तरण तथा धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों के प्रसार द्वारा भी अश्पृश्यता के उन्मूलन हेतु व्यापक प्रयास किए गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार द्वारा एक समतामूलक आधुनिक समाज के निर्माण का लक्ष्य सामने रखा गया और इस लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में अछूतों की प्रस्थिति में सुधार एवं अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु कई महत्वपूर्ण प्रयास किए गए जिसे हम 2 भागों में बांटकर देख सकते हैं-

(i) संवैधानिक एवं वैधानिक प्रयास (Constitutional and legislative efforts) – स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान ने लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था का लक्ष्य रखा और इसके लिए स्वतंत्रता समानता व न्याय के मूल्यों को वरीयता दी। इन मूल्यों को पाने के लिए आवश्यक था कि भारतीय जाति व्यवस्था में व्याप्त असमानता और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त किया जाए। इसी संदर्भ में न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु किए गये प्रमुख संवैधानिक प्रयास निम्न हैं:-

1. संविधान के द्वारा यह प्रावधान किया गया कि अनुच्छेद 341 (2) के तहत् संसद किसी भी जातीय समूह को अनुसूचित जाति की सूची में शामिल कर सकती है ताकि उनके कल्याण हेतु विशेष प्रावधान किये जा सकें।
2. अनुच्छेद 46 राज्य को निर्देश देता है कि वह पिछड़े वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति व जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की रक्षा करे एवं उन्हें सामाजिक अन्याय एवं सभी तरह के शोषण से बचाए।
3. अनुच्छेद 14 सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता का अधिकार प्रदान करता है।
4. अनुच्छेद 15 द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, या जन्म स्थान के आधार पर सामाजिक या शैक्षणिक भेदभाव को प्रतिबंधित किया गया है।
5. अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का अंत करता है और इस पर आधारित किसी भी आचरण को दण्डनीय घोषित करता है। बाद में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 और नागरिक सुरक्षा अधिकार अधिनियम, 1976 के तहत् इस कानून को और भी सख्त बनाया गया है।
6. अनुच्छेद 340 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग की समस्याओं की जांच के लिए आयोग गठित करने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों के हितों के रक्षार्थ अनुसूचित जाति तथा जनजाति राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया है जो इनके हितों के लिए कार्य करता है। अभी हाल में इस राष्ट्रीय आयोग को अनुसूचित जाति आयोग तथा अनुसूचित जनजाति आयोग के रूप में अलग-अलग कर दिया गया है।
7. अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 330 एवं अनुच्छेद 332 के द्वारा अनुसूचित जातियों को अन्य जातियों के समकक्ष लाने के उद्देश्य से क्रमश: शासकीय नौकरियों में, लोकसभा में एवं विधानसभाओं में उनकी संख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
8. यह आरक्षण केवल भर्ती में ही नहीं बल्कि उच्च पदों पर पदोन्नति, आयु सीमा में छूट, योग्यता स्तर में छूट, अनुभव में छूट आदि के रूपों में भी लागू किया गया है।
9. इनके लिये शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए आरक्षण का प्रावधान एवं छात्रावासों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
10. उपरोक्त के अलावा निम्न जाति के बच्चों के लिए कई अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की गई हैं, जैसे-पुस्तकों का प्रावधान, दोपहर भोजन का प्रावधान, छात्रवृत्ति का प्रावधान, स्कूल यूनिफार्म, कोचिंग आदि का प्रावधान।

(ii) विकास कार्यक्रमों के माध्यम से किए गए प्रयास (Efforts made through development programs) – उपरोक्त संवैधानिक प्रयासों के अलावा इनके प्रस्थिति उन्नयन एवं विकास हेतु कई अन्य कार्यक्रम भी शुरू किए गए हैं जिनमें प्रमुख हैं एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम (IRDP), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी, 20 सूत्री कार्यक्रम आदि।

6वीं योजना के तहत इस दिशा में एक विस्तृत रणनीति बनाई गई है जिसके 3 महत्वपूर्ण घटक हैं–

1. ***विशेष संघटक योजना (SCP)*** - केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के द्वारा अनुसूचित जातियों के विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण या देख-रेख करना।
2. ***विशेष केंद्रीय सहायता (SCA)*** - विभिन्न राज्यों के अनुसूचित जातियों के लिये विशेष संघटक योजना बनाना।
3. राज्यों में अनुसूचित जाति विकास निगम (SC DC) की स्थापना।

इन तीनों घटकों के संयुक्त प्रावधान में अनुसूचित जाति के विकास हेतु कई कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं।

उपरोक्त के अलावा स्वयंसेवी संगठनों एवं दलित साहित्यों द्वारा किए गए प्रयास भी इस दिशा में महत्वपूर्ण रहें हैं। निश्चित रूप से उपरोक्त प्रयासों ने भारतीय समाज में अस्पृश्यता जैसी हृदयविदारक घटना पर नियंत्रण स्थापित करने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की है। परंतु आज भी कई ग्रामीण समाजों में व्याप्त रूढ़ियाँ हैं जिनके कारण अस्पृश्यता की भावना निरंतर जारी है। हाल ही में दक्षिण भारतीय राज्यों में निम्न जाति के लोगों को अस्पृश्य करार देने की घटना सामने आई है। यह जरूर है कि वैज्ञानिक मूल्यों, आधुनिक मूल्यों, तर्कवाद, शिक्षा, धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया आदि के प्रसार के फलस्वरूप आज अस्पृश्यता के इक्के-दुक्के मामले ही सामने आते हैं। धन के बढ़ते महत्त्व ने जन्मजात प्रस्थिति (Ascribed Status) के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति (Achieved Status) के महत्त्व को स्थापित किया है। आज शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कौशल विकास के मुक्त अवसरों की उपलब्धता के कारण निम्न जाति के लोग भी योग्यता अर्जित कर विभिन्न आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में उच्च स्थानों पर पहुँचने में सफल हो रहे हैं। परिणामत: इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अस्पृश्यता की स्थिति में उपरोक्त सुधारों के बावजूद अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है। अस्पृश्यता के पूर्णत: उन्मूलन के लिए यह आवश्यक है कि इससे संबंधित कानूनों को कठोरता से लागू किया जाए। साथ ही सरकार द्वारा इन जातियों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान हेतु संबंधित कार्यक्रमों का दृढ़ इच्छाशक्ति एवं पारदर्शिता के साथ क्रियान्वयन किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अस्पृश्य जातियों में जागरूकता के प्रसार के साथ-साथ आम लोगों में इन जातियों के प्रति संवेदनशीलता एवं मानवीयता की भावना का प्रसार किया जाना भी आवश्यक है।

अस्पृश्यता-नवीन तथ्य

नवम्बर, 2007 तक, अस्वच्छ व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के बच्चों को मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति की स्कीम के अंतर्गत 3.09 करोड़ रुपए की राशि जारी की गई है तथा अनुसूचित जाति के अनुमानत: लगभग 33.86 लाख विद्यार्थियों को मैट्रिक-पश्च छात्रवृत्ति योजना के तहत 458.98 करोड़ रुपए की राशि जारी की गई है। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को एम.फिल और पी. एच. डी पाठ्यक्रमों में शिक्षा के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय फेलोशिप प्रदान की जाती है। अनुसूचित जातियों के लिए उच्च स्तर की शिक्षा की योजना का लक्ष्य चुने गए सुविख्यात संस्थानों में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा पाने के लिए पूरी वित्तीय सहायता मुहैया करा के अनुसूचित जाति से संबंधित विद्यार्थियों के बीच उच्च स्तरीय शिक्षा का बढ़ावा देना है।

"नेशनल ओवरसीज स्कॉलरशिप स्कीम" अंतिम रूप से चयन किए गए अभ्यार्थियों को विदेशों में मास्टर स्तर के पाठ्यक्रमों के विनिर्दिष्ट विषयों में और इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और विज्ञान के विषयों में पी-एच.डी की उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए वित्तीय सहायता मुहैया कराती है। राज्य सरकारों द्वारा अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए अनुसूचित जाति उप-आयोजना की तैयारी और कार्यान्वयन की गहन मॉनिटरींग की जाती है। ''राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम'' गरीबी रेखा से नीचे रह रहे व्यक्तियों को ऋण सुविधाएं मुहैया कराता है।

छुआछूत की प्रथा को समाप्त करने तथा अनूसूचित जाति के प्रति बड़ी संख्या में अपराधों और नृंशसता की घटनाओं को रोकने के लिए 'नागरिक अधिकारों का संरक्षण अधिनियम, 1995' और 'अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति अधिनियम, 1989' के कारगर कार्यान्वयन के माध्यम से प्रयास किए जाते हैं।

भारत में जातिवाद (Casteism in India)

जाति भारतीय समाज की मुख्य घटक रही है परंपरागत भारतीय समाज में जातियाँ एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करती रही हैं, जिससे उसके सदस्यों में सामूहिक चेतना की प्रवृत्ति का पाया जाना स्वाभाविक है, किन्तु वर्तमान में यह चेतना स्वहित समूह की चेतना एवं अन्य समूहों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष के रूप में प्रकट होकर सामाजिक समस्या का रूप धारण कर रही है।

भारत में जातिवाद वह सीमित एवं संकीर्ण भावना है जिसके तहत प्रत्येक कार्य स्वजाति के हित को ध्यान में रख कर किये जाते हैं। वर्तमान में यह जातीय निष्ठा सामुदायिक एवं राजनीतिक शोषण के रूप में परिलक्षित हो रही है। जातिवाद के तहत उच्च पदों पर आसीन सदस्य नियुक्ति एवं प्रोन्नति के मामले में अथवा व्यवहार में अपनी जाति अथवा उपजाति के लोगों को वरीयता देते हैं तथा यह वरीयता अन्य जातियों के हित की कीमतों पर होती है।

भारत में जातिवाद के स्वरूप
(Forms of Casteism in India)

भारत मे जातिवाद के स्वरूप को तीन स्तरों में बांट कर देखा जा सकता है।

1. प्रशासन में
2. राजनीति में
3. समाज में

भारत में जातिवाद प्रशासनिक या अधिकारिक स्तर पर व्यापक रूप में मौजूद है। उच्च पदों पर पहुँचनें पर प्रतिष्ठित अधिकारियों की नियुक्ति के संबंधो में, अथवा प्रोन्नति के मामले में स्वजाति को वरीयता देने लगते हैं। कुछ अधिकारी पद ग्रहण करते समय ही तय कर लेते हैं कि वे अपनी जाति के सदस्यों को अधिक महत्व देंगे। यह प्रवृत्ति कार्यालयों अथवा शिक्षण संस्थाओं में भी विराजमान है।

जातिवाद का सर्वाधिक व्यापक एवं विघटनकारी स्वरूप राजनीति में दिखाई देता है। कुछ जातियाँ सामूहिक रूप से संगठित होकर राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित कर रही हैं। राजनीतिक दल भी संख्या बल के आधार पर विभिन्न जाति के सदस्य को विशिष्ट क्षेत्र से चुनाव में उम्मीदवार बनाते हैं तथा वह उम्मीदवार चुनाव जीतने पर विशिष्ट जाति का ख्याल रखता है। इसके अलावा शीर्ष पद पर बैठे राजनीतिक नेता अपने जातियों के सदस्यों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करते हैं और अन्य जातियों के प्रति भेदभाव करते हैं।

समाजिक स्तर पर जातिवाद भारत में बहुत पहले से विराजमान हैं। इसके तहत विभिन्न जाति के सदस्य केवल अपने समूह मे विवाह करते हैं। खान-पान का संबंध रखते हैं, इसके अतिरिक्त स्वजाति के सदस्यों से अपने सुख दु:ख की भागीदारी करते हैं और उनसे मिलकर शांति एवं प्रसन्नता अनुभव करते हैं। साथ ही साथ वे समाज के अन्य जाति या सदस्यों को अपने से निम्न समझते हैं तथा स्वजाति केन्द्रीयता की भावना रखते हैं।

भारत में जातिवाद के कारण
(Reasons for Casteism in India)

भारत की जाति व्यवस्था में जातिवादी मानसिकता की प्रवृत्ति ऊँच-नीच की भावना से आरंभ हुई, किन्तु वर्तमान में गतिशीलता के विभिन्न अवसरों नें जातिवाद की भावना को बढ़ा दिया है जिसके कारकों पर निम्न रूप से चर्चा की जा सकती है:-

1. ***जाति के प्रति भावनात्मक लगाव (Emotional attachment to Caste)***– जाति एक बंद व्यवस्था (Closed System) एवं अन्तर्विवाही समूह (Endogamous Group) है। जन्म के बाद व्यक्ति परिवार के सदस्यों के बाद सर्वाधिक अन्त:क्रिया (Interaction) जाति समूह से करता है। जातीय संस्कृति एवं मूल्यों के आत्मसातीकरण (Assimilation) से अन्त: समूहों का निर्माण होता है। इस प्रकार स्वसमूह चेतना (Self group Consciousness) पैदा हो जाती है। इस स्तर पर व्यक्ति स्व जाति के सदस्यों को अपना तथा अन्य जातियों को पराया समझने लगता है। यदि समाजिक अंत:क्रिया (Social Interaction) के दौरान उसे अन्य जातियों के सदस्यों के प्रति कटुअनुभव हो तो वह अन्य जाति के प्रति कटुता की भावना भी रखने लगता है। ऐसी स्थिति में अवसर मिलने पर वह अपनी जाति के हितों को ध्यान में रखता है तथा अन्य को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है।
2. ***ब्रिटिश नीतियाँ एवं सामाजिक सुधार (British Policies and Social Reforms)***– भारत में अंग्रेजों ने अपने शासन को मजबूत बनाने के लिए विभिन्न जातियों में दूरी बढ़ाने का प्रयास किया। दलितों को हिन्दू समाज से अलग समूह के रूप में पहचान स्थापित करने का प्रयास किया गया। जिससे राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर किया जा सके। साथ ही विभिन्न जातियों को दी गयी सुविधा से जातीय प्रतिस्पर्धा का विकास हुआ। कुछ दलित नेताओं ने भी सुधारवादी कार्यक्रमों में उच्च जातियों के विशेषाधिकारों को चुनौती दी जिससे जातीय द्वेष एवं जातीयता की भावना प्रबल हुयी। इसी संदर्भ में गांधी जी के हरिजन उत्थान कार्यक्रम का भी विरोध किया गया। अम्बेडकर जैसे नेताओं ने दलित जातियों की समानता हेतु हिन्दू धर्म को अस्वीकार किया और बहुत से दलितों ने बौद्ध धर्म अपना लिया। परन्तु जाति के लचीलेपन के कारण वह जातीय सोपान (Caste hierarchy) से ही सम्बद्ध रहे और अन्य जातियों की प्रतिस्पर्धात्मक भावना को उग्र किया। ब्रिटिश नीतियों एवं सुधार कार्यक्रमों के प्रभाव से भी भारत में विभिन्न जातियों में दूरी व प्रतिस्पर्धा की भावना में वृद्धि हुयी और अपनी जाति के प्रति लगाव को मजबूत किया जिससे जातिवाद की भावना में भी वृद्धि हुयी।
3. ***जजमानी प्रथा की समाप्ति (End of Jajmani System)***– जजमानी व्यवस्था समाज में परंपरागत श्रम विभाजन की व्यवस्था थी जिसके तहत विभिन्न जातियों के सामाजिक आर्थिक संबंध होते थे। इस संबंध के कारण आपस में द्वन्द्व या ईर्ष्या भाव उत्पन्न नहीं होता था। इस अन्तर्निभरता के कारण जातिवादी भावना के अवसर कम थे किन्तु जजमानी व्यवस्था के टूटने एवं जातीय व्यवसायों के समाप्त होने से जातियाँ स्वतंत्र एवं वैयक्तिक ढंग से अपना विकास करने लगी । विकास की प्रक्रिया के तहत इन जातियों में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न हुई तथा स्वजाति हित सर्वोपरि हो गया।
4. ***संरक्षी विभेदीकरण की नीति (Policy of Protective Discrimination)***– भारतीय संविधान में पिछड़ी, दलित जातियों की प्रस्थिति को ऊँचा उठाने तथा उनकी निम्न स्थिति को सुधारने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है, जिसके तहत नौकरियों और संवैधानिक संस्थाओं में उनके लिए कुछ स्थान आरक्षित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त

इनके लिए विशेष रूप से कुछ योजनाएँ, चलाई गई हैं। जिससे ये जातियां अपने हितों के प्रति चेतन हों गई है तथा अपनी जातियों के प्रति एकता का भाव प्रकट कर रही हैं। इसके अतिरिक्त जो जातियाँ आरक्षण व्यवस्था के बाहर हैं उनके अन्दर असन्तोष उत्पन्न हो गया है। वे समझने लगी हैं कि उनके हित की कीमत पर आरक्षण की व्यवस्था की गई है। अत: उनके मन में आरक्षी जातियों के प्रति ईर्ष्या की और अपनी जाति के प्रति लगाव की भावना उत्पन्न हो गई है। अपनी जातियों की प्रस्थिति को ऊँचा उठाने के लिए वे भी प्रयास करने लगे हैं। क्योकि वे उसे प्रभु जाति (Dominant Caste) बनकर अपनी जाति प्रस्थिति (Caste Status) को बरकरार रखना चाहते हैं जो कि जातिवाद के रूप में प्रकट होता है।

5. ***जातीय संगठन (Caste Organization)***– विभिन्न जातीय संगठन भी परोक्ष रूप से जातिवाद को प्रोत्साहित कर रहे हैं। ये संगठन जातिवाद को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। हरित क्रांति के बाद पिछड़ी जातियों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने के कारण उनके अन्दर स्वहित चेतना का विकास हुआ तथा उन्होंने स्वहित की रक्षा के लिए जातीय संगठन बना लिए। धीरे-धीरे अधिकांश जातियों ने भी ऐसा करना शुरू किया। इन संगठनों का उद्देश्य अपनी जाति को एकीकृत करना, समाज में अपनी जाति के प्रभाव को बढ़ाकर दबाव समूह के रूप में विकसित करना है। जातीय संगठन जाति सम्मेलन आयोजित करवाते हैं स्वजाति से संबंधित पत्रिका, लेख का प्रकाशन करतें हैं। इनके कार्य व्यवहार जाति निष्ठा को बढ़ावा देते हैं तथा जातिवाद के लिए आधार तैयार करते हैं।

6. ***यातायात एवं संचार सेवाएँ (Transport and Communication Services)***– आधुनिक संचार सेवाओं और यातायात के साधनों का विस्तार होने के कारण अपनी जाति के सदस्यों से सम्पर्क करने के लिए दूरी कोई समस्या नही रही। अब विभिन्न जातियों के सदस्य आपस में आसानी से सम्पर्क कर सकते हैं। कुल मिलाकर राष्ट्रीय स्तर पर जाति संगठनों का बनना तथा उनके सदस्यों के बीच तालमेल बनाना यातायात एवं संचार साधनों की उपलब्धता के कारण सहज हो गया है।

7. ***संस्कृतिकरण (Sanskritization)***– संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा निम्न जातियाँ उच्च जातियों के कार्मकाण्ड, रीतिरिवाज, मूल्य, विचारधाराओं को ग्रहण करती हैं। ऐसी स्थिति में उच्च जातियाँ इनसे ईर्ष्या करती हैं। अत: जातीयश्रेष्ठता की भावना के कारण जातिवाद उत्पन्न हो रहा है क्योंकि संस्कृतिकरण करने वाली जातियाँ ऐसी स्थिति में लामबंद हो जाती हैं और जातीय निष्ठा को बनाए रखने की कोशिश करती हैं।

8. ***राजनीतिक कारण (Political Reasons)***– भारतीय राजनीति में जातितत्व एक निर्णायक पहलू के रूप में प्रकट हुआ है। प्रत्येक राजनीतिक दल अपना चुनावी समीकरण जाति संख्या के आधार पर तय करते है। इसका संबंध वोट बैंक से है। ग्राम पंचायत चुनाव से लेकर लोकसभा के चुनाव तक प्रत्येक राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों का चयन जाति संख्या के आधार पर तय करते हैं। वस्तुत: जातिवाद राजनीति के प्रत्येक स्तर पर है। क्योंकि विशेष जातियों का ध्यान न रखने पर राजनीतिक दलों के वोट वैंक पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इसीलिए चुनाव जीतने के बाद नेता जाति के हितों का ध्यान रखता है तथा अपनी सरकार बनने पर विशेष जाति के सदस्यों को प्रमुख पद देते हैं।

जातिवाद के परिणाम (Consequences of Casteism)

भारतीय समाज में जातिवाद कई समस्याओं को जन्म दे रहा है जिसे निम्न रूप में देखा जा सकता है:-

1. ***सामाजिक तनाव (Social Stress)***– भारत में जातिवादी प्रवृत्ति के बढ़ने के कारण विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक दूरी बढ़ गई है। यद्यपि यह दूरी पूर्व की दूरी से भिन्न है जो कि निर्योग्यता के कारण नहीं बल्कि योग्यता के कारण है। विभिन्न जातियाँ अपने हितो के प्रति सचेत होती हैं तो दूसरी जातियों को लगता है कि उनके हित प्रभावित हो रहे हैं। जातीय सम्मेलनों में केवल विशेष जाति के शामिल होने से अन्य जातियों को लगता है कि उनके प्रति जहर घोला जा रहा है। इस कारण जातीय तनाव बढ़ रहे हैं जो कि कभी-कभी संघर्ष का रूप भी ले लेते हैं। यह जातीय संघर्ष चुनावों के दौरान अक्सर दिखाई देता है।

2. ***शोषण (Exploitation)***– जातिवादी मानसिकता के कारण एक जाति अन्य जातियों के बीच अपना प्रभुत्व स्थापित करती है। इसके पश्चात उनका शोषण भी करने लगती है। जिससे अन्य जाति के भीतर असुरक्षा की भावना जन्म लेती है और शोषण के विपरीत प्रतिक्रिया भी करने लगती है।

3. ***राजनीतिक एवं सामाजिक तनाव लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बाधा (Political and Social Tension ugly in the Democratic Process)***– राजनीति में जातिवाद का प्रयोग होने से विशेष जाति को ही राजनीतिक लाभ मिलते हैं। अन्य जातियां उपेक्षित रह जाती हैं। इससे विभिन्न जातियों के बीच तनाव उत्पन्न होता है इसके अलावा राजनीति का जातिकेन्द्रित होना लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है।

4. ***राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता में बाधा (Hindrance to National Integrity)***– जातिवाद के कारण विभिन्न जतियों के बीच तनाव एवं संघर्ष होता है और राष्ट्रीय एकता में बाधा उत्पन्न होती है। चूँकि जातियाँ अब राष्ट्रीय स्तर पर लामबंद हो गई हैं। इसमें संचार साधनों की भूमिका प्रमुख

है। अत: जातीय तनाव एक क्षेत्र में होने पर देश के अन्य क्षेत्रों में आसानी से फैल जाता है और क्षेत्रीय समस्या का राष्ट्रीयकरण हो जाता है। इसके अतिरिक्त जातियाँ राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए कभी-कभी हिंसात्मक आंदोलन पर भी उतर आती हैं और राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं विकास प्रक्रिया बाधित होती है। गुर्जर आन्दोलन इसका उदाहरण है।

भारत में राजनीति में जातियों के प्रवेश से जाति का राजनीतिकरण हो रहा है। अत: राजनीति में जातीय मुद्दे ही महत्वपूर्ण हो गए हैं तथा अन्य राष्ट्रीय हित के मुद्दे पीछे छूट गए हैं। अत: राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा हित को चोट पहुँच रही है।

5. ***भ्रष्टाचार (Corruption)*** – जातिवाद, प्रशासनिक, राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण बन गया है। प्रशासनिक अधिकारी नियुक्तयों के मामले में जातीय हित को ध्यान में रखते हैं जो कि भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण बनता है। राजनीतिक स्तर पर जातीय हित को ध्यान रखने पर भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है तथा यह स्वयं भ्रष्टाचार का एक रूप है।

जातिवाद को दूर करने के उपाय (Ways to Eliminate Casteism)

भारत में जातिवाद की समस्या के समाधान के लिए संवैधानिक, कानूनी एवं विकासात्मक उपाय किए गऐ हैं। संविधान में जाति सूचक शब्दों का प्रयोग बंद कर दिया गया है इसके अलावा कानूनी कार्यवाही और विभिन्न मुकद्मों की सुनवाई के दौरान वादी एवं प्रतिवादी का केवल नाम ही प्रयोग किया जाता है और उनकी जाति का उल्लेख नहीं किया जाता। जातिवाद को समाप्त करने एवं विभिन्न जातीय समूहों के बीच अंत:क्रिया (Interaction) बढ़ाने के क्रम में अंतरजातीय विवाहों (Intercaste Marriage) को प्रोत्साहित किया जा रहा है। हिन्दू विवाह अधिनियम के तहत विभिन्न जातियों के बीच विवाह को मान्यता दी गई है। संविधान में व्यवसायिक निर्योग्यता को समाप्त कर दिया गया है। अब प्रत्येक जाति अपनी क्षमता एवं रूचि के अनुरूप व्यवसाय का चयन कर सकती है।

भारतीय संविधान सभी प्रकार की असमानता को प्रतिबन्धित करते हुये सभी नागरिकों को चाहे वह किसी भी जाति के हों समानता का अधिकार देता है और अस्पृश्यता जैसे जातीय निर्योग्यताओं को प्रतिबन्धित कर जातीय समरसता को प्रोत्साहित करता है।

निम्न एवं पिछड़ी जातियों के उत्थान एवं उनके प्रति भेद भाव को कम करने के लिए उनके सामाजिक एवं आर्थिक विकास की व्यवस्था के क्रम में उन्हें शिक्षण संस्थान एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया गया है। इसके अलावा इनके लिए अलग से छात्रवृत्ति दी जाती है और रोजगार कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। राजनीति में इनके पर्याप्त प्रतिनिधित्व के लिए स्थानीय निकायों तथा संसद एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं।

विभिन्न कानूनी उपायों के साथ ही जातिवाद दूर करने के सामाजिक प्रयास भी होते रहे हैं। आरम्भिक समाज सुधारकों ने जातीय समानता पर बल देकर जाति में व्याप्त असमानता को कम करने का प्रयास किया है। आज बहुत सारे गैर सरकारी संगठन एवं स्वयं सेवी संगठन जातिवाद के विरुद्ध व्यापक प्रचार अभियान चला रहे हैं। आज की आर्थिक प्रणाली विभिन्न जातियों को नजदीक लाकर जातिवाद को दूर कर रही है साथ ही आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग भी जातिवाद के प्रति बहुत कठोर नहीं है और वह जातीय प्रतिबन्धों को मान्यता नहीं देता। प्रेम विवाह भी अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित कर जातिवाद के उन्मूलन में सहायक रहा है।

मूल्यांकन (Evaluation)

उपरोक्त तथ्यों के आधार हम देखते हैं कि जातिवाद समकालीन भारतीय समाज की प्रमुख सामाजिक समस्या है। इसके निवारण के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं और उन प्रयासों का काफी हद तक सकारात्मक प्रभाव पड़ा है परिणामत: जातिवाद में कमी आई है। संवैधानिक उपायों के तहत व्यवसायिक निर्योग्यता की समाप्ति, अवसर की समता आदि उपायों से विभिन्न जातियों के लोग विभिन्न व्यवसाय बिना किसी भेदभाव के करते देखे जा सकते हैं। उच्च पदों के लिए साक्षात्कार के दौरान जातीय चिन्हों के न प्रयोग होने से जाति पर आधारित भेदभाव की संभावना कम हुई है। हिन्दू विवाह अधिनियम से विभिन्न जातियों के बीच विवाह से जातिवाद की गहनता में कमी आ रही है क्योंकि अर्न्तजातीय विवाह बढ़े हैं। संरक्षी विभेदीकरण (Protective Discrimination) की नीति के तहत निम्न एवं दुर्बल जातियों का सशक्तीकरण हो रहा है तथा भविष्य में जातीय शोषण एवं जातिवाद में कमी की संभावना बढ़ रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज में जातिवाद की समस्या काफी हद तक कमजोर हो रही है किन्तु यह समस्या अभी भी समाज में बनी ही नहीं हुई है बल्कि नए रूप में आ रही है। यद्यपि अश्पृश्यता तथा व्यवसायिक निर्योग्यता की समाप्ति संवैधानिक स्तर पर की गई है पर व्यवहार में अभी भी जातीय शोषण कभी कभी समाज में दिखाई पड़ता है संरक्षी विभेदीकरण की नीति के तहत निम्न जातियाँ सशक्त हुई हैं, किन्तु उनमें एक नए प्रकार की जातीय चेतना उत्पन्न हो रही है तथा वे अपना संगठन बनाने लगी हैं तथा अन्य उच्च जातियों के प्रति ईर्ष्या एवं जातिवाद की भावना से ग्रसित हो रही हैं। इसी क्रम में उच्च जातियाँ भी इनसे ईर्ष्या करने लगी हैं वर्तमान में राजनीति जाति पर आधारित हो गयी है तथा वहाँ जातिवाद बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। विभिन्न जातीय संगठन इसे बढ़ाने में मददगार साबित हो रहे हैं। उपरोक्त कमियों के आलोक में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:-

1. जातीय संगठन जातिवाद को बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं तथा जातीय निष्ठा का भावात्मक एवं राजनीतिक शोषण करते हुए राजनीतिक लाभ उठा रहे हैं। जातिवाद की समस्या के समाधान के लिए इन जातीय संगठनों पर रोक लगानी चाहिए अथवा इनके उन व्यवहारों पर नियंत्रण लगाना चाहिए जो जातिवाद को बढ़ावा देते हैं।
2. जातिवाद को समाप्त करने के लिए अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। जिससे विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक अंत:क्रिया में वृद्धि हो और सजातीय हितों के प्रति चेतना में कमी आए। इससे जातिवाद की गहनता में कमी आएगी।
3. पिछड़े जातियों की सामाजिक, आर्थिक दशा में सुधार के उपाय करने चाहिए। विकास की प्रक्रिया में शामिल होने पर उनके भीतर जातीय संकीर्णता जन्म नहीं लेगी और जातिवाद की सघनता में कमी आएगी।
4. जातिवादी प्रवृत्ति अशिक्षित एवं अतार्किक संकीर्ण मानसिकता के कारण उत्पन्न होती है। अत: शिक्षा में ऐसे तत्वों को शामिल करना चाहिए जिससे जातिवादी मूल्यों को ठेस पहुँचे। इसके अतिरिक्त जातिवादी प्रवृत्ति के उन्मूलन के लिए विभिन्न प्रचार माध्यमों द्वारा जनमत तैयार करना आवश्यक है।
5. संचार साधनों और गैर सरकारी संगठनों को भी जातिवाद के उन्मूलन हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे वे जातिवाद के विरूद्ध आधार स्तर पर जागरूकता का विकास कर सकें और राष्ट्रीय समानता व एकता की भावना का प्रचार करते हुए युवा मानसिकता को जातिवाद के विरोध में संगठित कर सकें।

भारत में जाति एवं राजनीति
(Caste and Politics in India)

जाति भारत की एक प्रमुख विशेषता है जो सोपान पर आधारित ऊँच एवं नीच के क्रम में विद्यमान रही है। जाति ने भारतीय समाज के लगभग सभी पक्षों को प्रभावित किया है। इन पक्षों में राजनीति एक प्रमुख पक्ष रहा है।

राजनीति में जाति की भूमिका
(Role of Caste in Politics)

जातिवाद भारत की एक प्रमुख प्रचलित विचारधारा है जिसकी मान्यता है कि जाति सामुदायिक संगठन (Community Organization) का एक मात्र आधार है। इसकी मान्यता है कि एक जाति के लोगों के हित एक जैसे होते हैं तथा अन्य जातियों के हितों से उसका कोई मेल नहीं होता। निश्चित रूप से जाति भारतीय सामाजिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है और भारतीय सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के साथ-साथ इसने राजनीति को भी कई रूपों में प्रभावित किया है। भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका को निम्न रूपों में देखा जा सकता है:–

1. विभिन्न चुनावी क्षेत्रों में राजनीतिक दलों द्वारा जातीय समीकरण के आधार पर अपना उम्मीदवार तय किया जाता है।
2. सरकार गठन के समय विभिन्न जातीय समूहों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।
3. जातीय राजनीति की शुरूआत ने कई राजनीतिक दलों के प्रति आम जनता में यह भाव उत्पन्न किया है कि अमुक दल किसी जाति विशेष का प्रतिनिधित्व करता है।
4. कई राजनीतिक दलों द्वारा चुनावों के समय वोटों की लामबंदी हेतु विभिन्न जातियों को उकसाने का प्रयास किया जाता है।

जाति में राजनीति की भूमिका
(Role of Politics in Caste)

राजनीति में जाति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पर, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जाति और राजनीति के बीच सिर्फ एक तरफा संबंध होता है। राजनीति भी जातियों को राजनीति के अखाड़े में लाकर जाति व्यवस्था और जातिगत पहचान को प्रभावित करती है। इस तरह, सिर्फ राजनीति ही जातिग्रस्त नहीं होती बल्कि जाति भी राजनीतिग्रस्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में यह अनेक रूप लेती है जैसे:–

1. प्रत्येक जाति खुद को बड़ा बनाना चाहती है। इसलिए पहले वह अपने समूह की जिन उपजातियों को छोटा या नीचा बताकर अपने से बाहर रखना चाहती थी, अब उन्हें एक साथ लाकर संख्या बल प्राप्त करने की कोशिश करती है।
2. चूंकि एक जाति केवल अपनी संख्या बल से सत्ता पर कब्जा नहीं कर सकती, इसलिए वह ज्यादा राजनीतिक ताकत पाने के लिए दूसरी जातियों या समुदायों को साथ लेने की कोशिश करती है और इस तरह उनके बीच संवाद और मोल-तोल होता है।
3. समकालीन राजनीति में नए किस्म की जातिगत गोलबंदी भी हुई है, जैसे 'अगड़ा' और 'पिछड़ा'।
4. सार्वजनिक वयस्क मताधिकार तथा एक व्यक्ति एक वोट की अवधारणा ने सभी मतदाताओं के वोटों को समान महत्त्व प्रदान कर निम्न जातियों में राजनीतिक चेतना के विकास को संभव बनाया है।
5. चुनावी लाभ हेतु जातियों को राजनीतिक दलों द्वारा उकसाये जाने की घटना कभी-कभी जातीय संघर्ष का कारण बन जातिगत समूहों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

इस प्रकार भारत में जाति एवं राजनीति के मध्य दोआयामी संबंध परिलक्षित होते हैं, जहाँ दोनों परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। साथ ही ये प्रभाव कई स्तरों पर सकारात्मक हैं तो

कई स्तरों पर नकारात्मक भी हैं। विभिन्न जातियों में एकता एवं सुदृढ़ता का विकास, निम्न जातियों में राजनीतिक चेतना की वृद्धि तथा जातिगत गतिशीलता की दृष्टि से यह लाभकारी प्रतीत होता है। वहीं जातीय संघर्ष एवं तनाव के रूप में यह नकारात्मक भी है। अतः आवश्यक है कि भारत में जाति एवं राजनीति दोनों को सही दिशा देते हुए जाति के राजनीतिकरण तथा राजनीति के जातिकरण की स्थिति से बाहर निकलकर राष्ट्रीय एवं विकासात्मक मुद्दों के आधार पर राजनीति को प्रोत्साहित किया जाए।

भारत में समानता एवं जाति आधारित आरक्षण (Equality and Caste based Reservation in India)

एक आधुनिक मूल्य के रूप में समानता का अर्थ मानव मात्र के बीच किसी भी प्रकार के विभेद के अभाव से है। समानता के अंतर्गत सभी व्यक्तियों के लिये अवसरों पर समान अधिकार उपलब्ध कराने का विचार निहित है।

भारत में प्राचीनकाल से ही विभिन्न जातियों की विद्यमानता रही है तथा वर्ण मॉडल के तहत ये जातियाँ विभिन्न स्तरों पर अवस्थित रहीं हैं। जातिगत सोपान पर आधारित इस व्यवस्था में उच्च तथा निम्न जातियों के मध्य असमानता रही है तथा निचले स्तर पर अवस्थित जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति निम्न बनी रही है। उच्च जातियों को बहुत से सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त थे जिससे उनकी प्रतिष्ठा बहुत ऊंची थी और साथ ही समाज के संसाधनों और अवसरों पर उनका नियंत्रण था। निम्न जातियों पर कई निर्योग्यताएं थोपते हुए, उन्हें विकास के सभी अवसरों से वंचित कर दिया गया था। उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों का लगातार शोषण होता रहा और उन पर तरह-तरह के अत्याचार किए जाते रहे हैं। जिससे इनकी स्थिति में लगातार गिरावट होती रही और ब्रिटिश काल में निम्न जातियाँ एक अत्यंत कमजोर और उपेक्षित वर्ग के रूप में देखी जाने लगी।

भारत ने औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के पश्चात् एक लोकतंत्रात्मक समाजवादी राष्ट्र के निर्माण का लक्ष्य रखा। वर्षों से समाज के निचले पायदान पर अवस्थित तथा शोषित वर्ग को सामाजिक न्याय के माध्यम से समाज में उचित स्थान सुनिश्चित कराना इसका महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था। अतः यह आवश्यक था कि सभी लोगों को जीवन के सभी क्षेत्रों में समान अवसर उपलब्ध कराते हुए दुर्बल वर्गों हेतु विशेष व्यवस्था की जाए ताकि हम एक आधुनिक समतामूलक भारत निर्माण का लक्ष्य प्राप्त कर सकें। सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर विभिन्न वर्गों एवं जातियों के उत्थान हेतु विभिन्न रूपों में प्रयास किए गए।

भारतीय संविधान विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से सामाजिक समानता के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपबंध करता है। इन्हें दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है। पहला भाग अवसरों की औपचारिक समानता से संबंधित है। इसके अंतर्गत संविधान जाति, लिंग, जन्मस्थान, धर्म आदि के आधार पर सभी को समान अवसर उपलब्ध कराता है। संविधान की उद्देशिका में वर्णित 'प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता' तथा 'सामाजिक न्याय' जैसे शब्दों के माध्यम से सामाजिक असंतुलन दूर कर सभी को समान अवसर की उपलब्धता की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15 एवं 16 के द्वारा सभी व्यक्तियों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समानता के अवसर उपलब्ध कराए गए हैं। साथ ही अनुच्छेद 17 के तहत अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रावधान किया गया है।

इसका दूसरा भाग संरक्षणात्मक भेदभाव (Protective Discrimination) की नीति से संबंधित है। भारत में लम्बे समय से शोषण एवं असमानता के शिकार समूहों को एक विशेष श्रेणी में श्रेणीबद्ध कर उन्हें विशेष कल्याणकारी सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है। इन वर्गों को आरक्षण के माध्यम से सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य वर्गों के समकक्ष लाने का प्रयास किया गया है। इसके तहत इनके लिए विभिन्न शिक्षण संस्थानों, नौकरियों तथा संघीय व राज्य विधान मंडलों में सीटों का आरक्षण किया गया है। अनुच्छेद 330, 332 तथा 335 इसी से संबंधित है। अनुच्छेद 46 के द्वारा राज्य को यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वह दुर्बल वर्ग के सभी व्यक्तियों के आर्थिक एवं शैक्षणिक हितों का संवर्द्धन करे तथा उन्हें सभी प्रकार के अन्याय एवं शोषण से बचाने का प्रयास करे।

सरकार द्वारा इसके अतिरिक्त विभिन्न योजनागत प्रयासों के माध्यम से सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में समाज के दुर्बल वर्ग के हितों को ध्यान में रखकर कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है, ताकि इन वर्गों का सामाजिक-आर्थिक उत्थान सम्भव हो और यह वर्ग समतापूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत कर सके।

निश्चित तौर पर उपरोक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप सदियों से निम्न स्तर का जीवन-यापन कर रहे एवं सामाजिक असमानता के शिकार वर्गों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार हुआ है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च प्रस्थितियों को प्राप्त करने के उपरांत इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई है। इनकी स्थिति में इस सकारात्मक परिवर्तन के लिए उपरोक्त प्रयासों के अतिरिक्त कई अन्य तत्व भी भागीदार रहे हैं जिनमें संचार साधनों का विकास, वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टिकोण का विकास, शिक्षा का प्रसार, आधुनिक मूल्यों का प्रसार आदि प्रमुख रहे हैं। परंतु अभी भी हम एक समानतापूर्ण एवं न्याययुक्त समाज के निर्माण के लक्ष्य की प्राप्ति से दूर हैं।

अतः आवश्यक है कि सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की स्थापना के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपरोक्त प्रयासों को निरंतर जारी रखा जाए। सरकार के अतिरिक्त आम जनता के स्तर पर भी इसके लिए प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि समाज के दुर्बल वर्गों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाए।

जाति आधारित आरक्षण के पक्ष में तर्क
(Arguments in favour of Caste based Reservation)

भारत में जाति के आधार पर आरक्षण के पक्ष में निम्नांकित तर्क दिए जाते हैं:–

1. ये संविधान की अनिवार्य आवश्यकता (Mandatory Requirement) की पूर्ति करते हैं जिसमें समाज के उन वर्गों को संतुष्ट करना है जिनमें कई दशकों से अन्दर ही अन्दर असंतोष उत्पन्न रहा था।
2. हमारा यह नैतिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य है कि यह सुनिश्चित करें कि उत्पीड़ित और दमित (suppressed) व्यक्तियों और धनाढ्य (affluent) व्यक्तियों में समाज में समता हो। शोषित व्यक्तियों में विश्वास की भावना भरी जाने की आवश्यकता है।
3. राष्ट्र की अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग की 52% जनसंख्या का कुल 4.0% मात्र प्रथम श्रेणी सरकारी और राजकीय क्षेत्र में प्रतिनिधित्व है। यह कमजोर वर्गों के साथ नितांत अन्याय है जिसको ठीक करने की आवश्यकता है।
4. आरक्षण विरोधियों का एक तर्क योग्यता के प्रश्न पर आधारित है। इनका मानना है कि योग्यता उच्च जातियों में ही निवास करती है, परन्तु भारतीयों के विरूद्ध अंग्रेजों के ऐसे ही तर्क को हम पूर्व में ही खारिज कर चुके हैं तथा बिना अवसर प्रदान किए योग्यता पर प्रश्न चिह्न उठाना उचित नहीं है।

जाति आधारित आरक्षण के विरोध में तर्क
(Arguments against Caste based Reservation)

भारत में जाति आधारित आरक्षण की कई आधारों पर तीखी आलोचना हुई है। इसके विरूद्ध पांच प्रमुख तर्क दिए गए हैं:-

1. 'पिछड़ेपन की परिभाषा केवल जाति के आधार पर की गयी है। इससे घृणास्पद जाति संबंधी पूर्वाग्रह और पक्षपात जो (जाति) व्यवस्था में प्रचलित है बने रहेंगे। कोई भी विशेष प्रावधान समस्त निर्धन व्यक्तियों के लिए बगैर जाति का ध्यान किए होना चाहिए और केवल आर्थिक मानदंडों पर आधारित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरी पिछड़ी जातियों/वर्गों का पता लगाने के लिए केवल 'जाति' के एक मापदण्ड का उपयोग बहुल (multiple) मापदण्डों जैसे धर्म, आय, व्यवसाय और किसी मोहल्ले में मकान (जिन पर कई विद्वानों ने बल दिया है) के महत्व को कम करता है।
2. यद्यपि 'जाति' की परिभाषा करने के लिए बहुत प्रयत्न किए गए, 'वर्ग' की कोई परिभाषा नहीं दी गयी और समाजशास्त्रीय दृष्टि से जाति और वर्ग दो पृथक श्रेणियाँ है। इसलिए मंडल रिपोर्ट ने अधिक से अधिक 'अन्य पिछड़ी जातियों' का और न कि 'अन्य पिछड़े वर्गों' का पता लगया जिसकी आवश्कता थी।
3. अन्य पिछड़ी जातियां/वर्गों की पहचान करने का मापदण्ड अनियमित, ऊटपटांग और राजनीति से प्रेरित है। यह विशुद्ध वैज्ञानिक विधि पर आधारित नहीं है। मंडल कमीशन को जाति/वर्ग के सामाजिक, शैक्षिक, और आर्थिक पिछड़ेपन को ज्ञात करने के लिए जो ग्यारह सूचक अपनाए इनमें अच्छे सूचकों की विशेषताओं का अभाव है। उदाहरणार्थ, सामाजिक सूचक जो अल्प आयु में विवाह के मापदण्ड से संबंधित हैं किसी विशेष जाति या वर्ग में ही नहीं पाया जाता, अपितु यह एक अत्यन्त पुरानी सामाजिक बुराई है जो साधारणतया सभी जातियों और वर्गों में पायी जाती है। इसलिए इसको जातियों और वर्गों में एक दूसरे में भेद प्रदर्शित करने के लिए सूचक के रूप में काम में नहीं लिया जाना चाहिए था। इसी प्रकार श्रम में स्त्रियों की भागीदारी वाले सामाजिक सूचक को एक आर्थिक सूचक माना जाना चाहिए क्योंकि स्त्रियों को अपनी पारिवारिक आय बढ़ाने के लिए काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण महिलाओं में अपने परिवार के खेती के कार्यों में सहायता करने की एक आम प्रवृत्ति होती है और यह किसी विशेष जाति अथवा वर्ग से सम्बन्धित नहीं है।

इस प्रकार एक व्यक्ति को 'शैक्षिक रूप से पिछड़ा' माना जाता था यदि उसके पिता और दादा ने प्राथमिक स्तर से आगे अध्ययन नहीं किया है। उसको 'सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा' माना जाता था यदि (हिन्दू होने की अवस्था में) वह तीन द्विज वर्णों में नहीं आता था, यानि कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य नहीं था, और/या (गैर-हिन्दू होने की अवस्था में) वह उन हिन्दू जातियों में धर्मान्तरित (convert) था जिन्हें सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ परिभाषित किया हुआ है या उसके पिता की आय निर्धनता रेखा से नीचे थी। क्या ये विस्तृत जांच-पड़तालें वास्तव में की गयी थीं? प्रमाण इसे नहीं दर्शाता है।

अधिकतम निरुत्साह करने वाला भाग आर्थिक सूचकों का चयन है जहां प्रति व्यक्ति पारिवारिक आय को बिल्कुल ही छोड़ दिया गया है। परिवारिक सम्पत्ति और उपभोक्ता ऋण उनके व्यय को बतलाते हैं और यह इस पर निर्भर करता है कि उनके परिवार बड़े या छोटे हैं या वे सामाजिक परंपराओं को अधिक निभाते हैं और अक्सर ऋण लेते रहते हैं।

अन्त में, वह आर्थिक सूचक जिसमें पानी के स्रोत पर विचार किया गया है एक बहिर्जात (exogenous) कारक से सम्बन्धित है, न कि किसी विशेष जाति या वर्ग से। इस प्रकार जबकि जातियों/वर्गों के पिछड़ेपन की पहचान सही सूचकों पर आधिरित नहीं है तो आरक्षण को बढ़ाने के प्रयत्नों को स्वीकृति नहीं मिल सकती।

4. 'पिछड़े' वर्ग की परिभाषा और पहचान करना अवैज्ञानिक है। मंडल आयोग ने 3,742 वर्गों को 'पिछड़ा' माना, जबकि कालेलकर समिति ने लगभग 2000 वर्गों को। इससे प्रकट होता है कि या तो समिति ने सही पहचान नहीं की या लाभ उठाने के उद्देश्य से दूसरी जातियों की एक बड़ी संख्या ने बाद में अपने को पिछड़ी जातियों में वर्गीकृत कराने के लिए संघर्ष किया।
5. जातियों के वर्गीकरण का जनसंख्या प्रक्षेपण (projection) 1931 की जनगणना के आंकड़ों के उपयोग पर आधारित था। 1931 और 1990 के बीच औद्योगीकरण, नगरीकरण, शैक्षिक विकास, प्रवृजन और गतिशीलता में तेज वृद्धि के कारण कई परिवर्तन आये हैं। इसलिए मंडल आयोग द्वारा 1980 में अपनाया गया पुरानी जनगणना का आधार, अपनाये गये मानदण्डों का एक विकृत चित्र प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता के पश्चात् किये गये भूमि सुधारों ने विभिन्न जातियों को सामाजिक और शैक्षिक स्थिति में बहुत परिवर्तन कर दिया है और वे ग्रामीण अभिजन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गए।
6. दूसरा गलत अनुमान जो मंडल अयोग ने लगाया वह यह था कि गैर-हिन्दुओं में अन्य पिछड़ी जातियों/वर्गों का वही अनुपात था जो हिन्दुओं में था। गैर-हिन्दू अन्य पिछड़ी जाति/वर्गों का अनुपात कुल जनसंख्या का 8.40% माना गया था या उनकी वास्तविक जनसंख्या का 52.0%। 8.40% और 52.0% की दोनों संख्याएं मनमाने ढंग से ली गयी थीं। यह इस रिपोर्ट की पद्धतिशास्त्रीय एवं आधारभूत त्रुटि है।
7. सामाजिक-शैक्षणिक क्षेत्र के सर्वेक्षण के लिए प्रतिचयन प्रणाली अत्यंत त्रुटिपूर्ण थी उसमें प्रत्येक जिले से दो गांवों और एक शहरी ब्लॉक का चयन करना था। ऐसा प्रतिदर्श जो केवल 1.0% जनसंख्या को ही सम्मिलित करता हो, अत्यन्त संदेहास्पद है।
8. पिछड़ेपन के मानदण्डों को निर्धारित करते समय, आर्थिक मानदण्डों को दिया गया महत्व बहुत अपार्याप्त था। जातियों/वर्गों के वर्गीकरण के लिए मंडल आयोग द्वारा निर्धारित किए गये 22 अंकों में से कवेल चार अंक आर्थिक मानदण्डों को दिए गए। इससे यह स्पष्ट होता है कि एक वर्ग के 'पिछड़ेपन' को निर्धारित करते समय उसकी आर्थिक स्थिति को अधिक महत्व नहीं दिया गया।
9. भारतीय संविधान ने 'पिछड़े वर्ग' की परिभाषा नहीं की है, परन्तु उसमें 'पिछड़े वर्गों की स्थितियों के अन्वेषण के लिए एक आयोग की नियुक्ति का प्रावधान है। वह इसको अनिवार्य नहीं बनाता कि सरकार आयोग से पिछड़े वर्गों की पहचान करने को कहे। मंडल अयोग के अध्यक्ष ने जो स्वयं एक पिछड़ी जाति के सदस्य थे और जो अपने राजनीतिक जीवन में पक्षपातपूर्ण वक्तव्य देने के लिए प्रसिद्ध रहे, पिछड़ी जातियों/वर्गों को पहचानने के लिए जो सूचक काम में लिए और उन्हें अंक प्रदान किये उसमें उनकी भूमिका पक्षपातपूर्ण रही। चूंकि गहन अन्वेषण और सर्वेक्षण नहीं किया गया और सही मानदण्डों का प्रयोग नहीं किया गया इसलिए जातियों/वर्गों के चयन का मंडल आयोग का आदेश नहीं माना जा सकता। स्वयं आयोग ने स्वीकार किया था कि वर्गो को सामाजिक और शैक्षिक रूप में सूचीबद्ध कुछ मनमाने ढंग से किया गया है और उसमें समर्थनीय दृष्टिकोण के गुण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
10. जनसंख्या विकास की स्थिर दर का अनुमान कैसे लगाया गया और प्रतिशतता कैसे अपनायी गयी? एक दम से 27.0% कैसे निर्धारित की गयी? सरकार से आरक्षण की समग्रता पर विचार करने की आशा की जाती है जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, विकलांग व्यक्ति, भूतपूर्व सैनिक, विस्थापित व्यक्ति और दूसरी विशेष श्रेणियाँ सम्मिलित हैं। इन सबको जब मंडल आयोग की सिफारिश किए हुए 27.0% से जोड़ देते हैं तो आरक्षण 59.0% से भी अधिक हो जाता है। बची हुई प्रतिशतता इतनी कम रह जाती है कि इस अनुभाग के विद्यार्थी और युवाओं को प्रतिक्रिया व्यक्त करने और आन्दोलन चलाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता। अत: आरक्षण लाभकर रोजगार प्राप्त करने में रूकावट सिद्ध होता है।
11. मंडल आयोग की रिपोर्ट को दस वर्षो तक कोई महत्व नहीं दिया गया। जब किसी रिपोर्ट पर इतने समय बाद विचार किया जाता है तो उसका अद्यतन बनाना चाहिए और परिवर्तित आवश्यकताओं और उसमें कमियों के बारे में उसका परीक्षण होना चाहिए। फिर यह भी आकलन होना चाहिए कि उसे स्वीकृत करने के क्या परिणाम होंगे। यह एक निश्चित समय में किया जाता है। जिस वी.पी. सिंह सरकार ने मंडल आयोग की रिपोर्ट की स्वीकृति की घोषणा की, उसने इस प्रक्रिया को पूरा करने की चिन्ता ही नहीं की जिसके फलस्वरूप उसमें कमियों के कारण हिंसा और आंदोलन हुए।
12. संविधान में यह व्यवस्था दी गयी है कि एक वर्ग जो राज्य की सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधत्व रखता है, को 'पिछड़ा' वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। यह कार्य सरल नहीं है क्योंकि इस पहलू पर सांख्यकीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, केवल भ्रांति उत्पन्न करने वाले आंकड़ों का एक पुंज (सेट) है जिसका आंकलन कुछ राज्यों के पिछड़े वर्गों की सूचियों के आधार पर किया गया है।
13. मंडल आयोग की रिपोर्ट के क्रियान्वयन का एक परिणाम यह हुआ कि चूंकि मंडल आयोग रिपोर्ट ने 27.0% आरक्षण को प्रत्येक पिछड़ी जाति के कोटा के रूप में विभाजित नहीं किया है, इसमें 27.0% के आरक्षण का अधिकांश भाग उन थोड़ी सी जातियों द्वारा हथिया लिया जाएगा जो पिछड़ी जातियों में प्रबल हैं। इन थोड़ी प्रबल जातियों में भी कुछ ही परिवार ऐसे होंगे जो कि अपने पिछड़े भाईयों की कीमत पर

समृद्ध बनेंगे। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण नीतियों के पूर्व में हुए क्रियान्वयन से यह अनुभव हो चुका है। मंडल आयोग रिपोर्ट में इसकी कोई सीमा नहीं है कि एक परिवार के कितने सदस्य आरक्षण का लाभ उठा सकते हैं और न ही उसमें कोई आर्थिक मापदण्ड है जो कि सम्बन्धित जाति के सबसे अधिक समृद्ध व्यक्ति को आरक्षण कोटा से लाभ उठाने से वंचित करें।

जाति आधारित जनगणना (Caste based Census)

29 जून, 2011 को बहुप्रतीक्षित जाति आधारित जनगणना की शुरूआत त्रिपुरा के हाजेमारा/हेजामारा के जनजातीय गांव संखोला से हुई। 1931 की आखिरी जनगणना के बाद यह पहली जाति आधारित जनगणना है, दूसरे शब्दों में यह आजादी के बाद पहली जाति आधारित जनगणना है। यहां उल्लेखनीय है कि सरकार का यह तीसरा मौका है जब किसी बड़े कार्यक्रम की शुरूआत किसी आदिवासी क्षेत्र से हुई है। पहले यूनिक आइडेंटिफिकेशन नम्बर की शुरूआत महाराष्ट्र के नंदूरवार जिले के हेभली गांव से तथा राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की शुरूआत राजस्थान के बांसवाड़ा (आदिवासी क्षेत्र) से की गई।

जनगणना राज्य सरकारों द्वारा कराई जाएगी एवं ग्राम पंचायतों की मदद ली जाएगी। ग्रामीण बी.पी.एल. जनसंख्या के आंकड़ों को अंतिम रूप देने से पहले ग्राम सभाओं के सामने पेश किया जाएगा, ताकि वे अपना ऐतराज यदि हो तो दर्ज करा सकें। इसका अनुमोदन ग्राम सभा द्वारा किया जाएगा।

सकारात्मक प्रभाव (Positive Impact)

इस जनगणना से जातियों की स्पष्ट संख्या प्राप्त होगी, जिससे केंद्र प्रायोजित कल्याणकारी योजनाओं का उचित कार्यान्वयन हो सकेगा। साथ ही विभिन्न समुदायों की पूर्व संख्या स्पष्ट होने से, उनके विकास हेतु विशेष कल्याणकारी कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करने में यह सहायक सिद्ध होगी। यह जनगणना आरक्षण के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

नकारात्मक प्रभाव (Negative Impact)

इस जनगणना से कई नकारात्मक परिणाम भी उत्पन्न हो सकते हैं। इससे समाजिक विद्वेष की भावना का विकास होगा। पिछड़ा वर्ग का फायदा उठाने के लिए जाति बदलकर दर्ज करवाने की सम्भावना बढ़ जाएगी। इसके अतिरिक्त जाति आधारित राजनीति को भी बल मिलेगा।

मूल्यांकन (Evaluation)

आजादी के बाद की पहली चिरप्रतिक्षित, बहुउद्देशीय और विवादस्पद जाति आधारित जनगणना सम्पन्न हो चुकी है। प्रथमत: इस जनगणना का उद्देश्य निर्धनता के नीचे के लोगों (BPL) की ठीक-ठीक पहचान कर उनके कल्याणार्थ विभिन्न योजनाओं व प्रावधानों के तहत उनके हितों की रक्षा करना है। निश्चित रूप से भारत जैसे राष्ट्र, जहां की लगभग एक-चौथाई जनसंख्या गरीबी में गुजर-बसर करती हो, के लिए यह एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम साबित होगा। तदोपरांत भारत के नियोजन कार्यक्रमों में भी सहुलियत होगी और देश में व्याप्त आर्थिक असमानता की बड़ी खाई को पाटने में कुछ हद तक यह जनगणना मददगार साबित होगी।

लेकिन भारत जैसे जनाधिक्य वाले राष्ट्र और इसके तुरंत पूर्व हुई क्रमिक दसवर्षीय जनगणना, (15वीं जनगणना, 2011), जाति आधारित जनगणना के विभिन्न उद्देश्यों के प्राप्ति की ओर भी इशारा करती है। जातिगत जनगणना प्रारंभ होने से पूर्व भारत की संसद, राजनीतिज्ञों और समाज में जो विवादास्पद बहस और चर्चाएं हुईं, वह जगजाहिर है। तथा दो-दो जनगणना में होने वाले खर्चों के औचित्य-अनौचित्य पर भी प्रश्न चिह्न समाज में बहस का कारण बनी है।

साथ ही इस जनगणना के दौरान सही-सही निर्धन लोगों की पहचान के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखना जैसे-मोटरवाहन, क्रेडिट कार्डधारक, पक्के मकान, रेफ्रीजिरेटर, टेलिफोन आदि की उपलब्धता-अनुपलधता की सही जानकारी मुश्किल प्रतीत होती है।

बावजूद इसके जातिगत जनगणना एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है और लोकतांत्रिक देश में ऐसे कार्यक्रमों की आलोचना करना सही प्रतीत नहीं होता है। जहाँ एक ओर इस कार्यक्रम से सरकारी नियोजन प्रणाली व प्रावधानों के संचालन में गति आएगी तो वही दूसरी ओर उसके दूरगामी सुप्रभाव भी परिलक्षित होंगे।

भारत में जाति संघर्ष (Caste Conflict in India)

जाति द्वन्द या जाति-संघर्ष (Cast Conflict) वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक गम्भीर समस्या या परिघटना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसका तात्पर्य विभिन्न जातियों या जातीय समूहों के बीच संघर्ष के उस प्रारूप से है, जिसमें वे सामाजिक या सामूहिक हितों का त्याग कर अपनी जातिगत हितों की पूर्ति के लिए एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्षशील होते हैं। यह संघर्ष वैचारिक अथवा हिंसात्मक दोनों ही रूपों में अभिव्यक्त होता है, किन्तु इसकी हिंसात्मक प्रकृति ही सामाजिक जीवन के लिए ज्यादा खतरनाक होती है, जैसा कि हम झारखण्ड, बिहार तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में उच्च और निम्न जातियों के बीच के संघर्षों में देख सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि जाति व्यवस्था हमारी भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विशिष्टता है। प्रारम्भ से ही भारतीय समाज को धर्म, कर्म अथवा व्यवस्था की दृष्टि से जाति व्यवस्थागत सोपानिक रूप में स्तरीकृत (Stratified) किया गया है। इस सोपानिक व्यवस्था (Hierarchical System) में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य द्विज जातियों के रूप में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान पर अवस्थित हैं तथा पिछड़ी व निम्न जातियों को 'शूद्र' के रूप में निम्नतम सामाजिक पायदान पर

रखा गया है। चूंकि हमारी पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था में धर्म तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा इस व्यवस्था को वैधता प्रदान की गयी थी, इसलिए यह एक सर्वमान्य व्यवस्था के रूप में चली आ रही थी और औपनिवेशिक काल के पूर्व तक हमारे समाज में जाति-द्वंद या जाति-संघर्ष जैसी कोई चीज दृष्टिगत नहीं हुई।

औपनिवेशिक काल के दरम्यान पश्चिमी सामाजिक व्यवस्था तथा मूल्यों से सम्पर्क, शिक्षा, संचार, औद्योगीकरण, तकनीकीकरण, नगरीकरण आदि के विकास तथा स्वतंत्रता, समानता और मौलिक अधिकारों के प्रति वैश्विक जागरूकता ने हमारी सामाजिक व्यवस्था के निम्न सोपानों पर स्थित जातियों को प्रभावित किया। परिणामतः वे अपनी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति (Political Status) में उर्ध्वमुखी गतिशीलता (Upward Mobility) के प्रति जागरूक हुए और उन्हें समाज की उच्च जातियों द्वारा अपने शोषण का एहसास हुआ जिसकी परिणति क्रमशः जाति संघर्ष के रूप में अभिव्यक्त हुई।

जाति संघर्ष के कारण (Reasons for Caste Conflict)

भारत में जाति द्वंद विभिन्न कारकों का समेकित परिणाम रहा है, जिन्हें निम्नांकित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है–

1. ***जाति व्यवस्था में निहित शोषण व कुरीतियाँ (Exploitation and evils inherent in Caste System)*** – हमारी परम्परागत जातिगत सोपानिक सामाजिक व्यवस्था पवित्रता तथा अपवित्रता जैसी धारणाओं पर आधारित रही है जिसमें धीरे-धीरे अस्पृश्यता, छुआछूत, भेदभाव आदि कुरीतियां प्रवेश करती चली गईं। परिणामतः जहां इन्होंने उच्च वर्गों को अपनी उच्च सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति को बनाए रखने में मदद की, वहीं निम्न तथा पिछड़ी जातियों का उच्च जातियों द्वारा शोषण को सामाजिक वैधता प्रदान की। जैसे ही अन्य कारकों ने पिछड़ी अथवा शोषित जातियों में जागरूकता पैदा की; वे अपने शोषण के विरुद्ध एकजुट होकर खड़े हो गए।

2. ***मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन (Change in Value System)*** – परम्परागत सोपानिक व्यवस्था को परम्परागत धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के द्वारा वैध ठहराया गया था। चूंकि निम्न पायदान पर अवस्थित जातियां उक्त मूल्यों से सहमत थीं। अतः विरोध या शोषण का कोई कारण उन्हें नहीं दिखाई पड़ता था। किन्तु, आधुनिक पश्चिमी मूल्यों के सम्पर्क ने उन्हें प्रभावित किया और फिर उन्हें अपनी सामाजिक व्यवस्था में निहित मूल्यों के शोषणकारी तथा विभेदकारी (Exploitative and Discriminatory) होने का आभास हुआ। फलतः वे अपने परम्परागत मूल्यों को त्यागकर आधुनिक मूल्यों को आत्मसात करने लगे और परम्परागत व्यवस्था के उच्च पदस्थ जातियों से उनका संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

3. ***सामाजिक गतिशीलता की सम्भावना (Potential for Social Mobility)*** – आधुनिक मूल्यों के प्रसार ने लोकतांत्रिक, राजनीतिक व्यवस्था एवं योग्यता आधारित आर्थिक व्यवस्था में सामाजिक-आर्थिक रूप से निम्न पायदान पर अवस्थित जातियों को इस बात का एहसास दिलाया कि वे समाज में अपनी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रस्थिति में उर्ध्वाधर गतिशीलता लाकर अपनी प्रस्थिति में सुधार ला सकते हैं। चूंकि उच्च जातियां उनके इस उद्देश्य में सबसे बड़ी बाधक थीं फलतः दोनों के बीच संघर्ष स्वाभाविक हो गया।

4. ***संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों की प्रत्याभूति (Fundamental Rights guaranteed by the Constitution)*** – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारा संविधान सभी व्यक्तियों को समानता तथा नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकारों की समान प्रत्याभूति करता है, साथ ही इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध संवैधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान किए हैं। ये संवैधानिक प्रावधान जहाँ एक ओर निम्न जातियों के विकास और उर्ध्वाधर गतिशीलता में सहायक हुए हैं वहीं ये जातियाँ समाज की शोषक जातियों के विरुद्ध लामबंद और संघर्ष के लिए प्रेरित हुई है।

5. ***राजनीतिक दलों द्वारा स्वार्थ सिद्धि का प्रयास (Efforts to achieve self-interest by Political Parties)*** – भारत की बहुदलीय व्यवस्था में वोटों की राजनीति कई तथ्यों पर आधारित है, जिनमें जाति एक महत्वपूर्ण आधार के रूप में सामने आई है। परिणाम यह है कि भारत में सभी प्रमुख राजनीतिक दल चाहे वह कांग्रेस, सपा, बसपा, राजद या फिर लोजपा हो- सभी मुस्लिम, यादव, कुर्मी, लोध तथा अन्य पिछड़ी जातियों को आधार बनाकर वोटों की जातिगत लामबंदी कर रहे हैं। परिणामतः जहां इन जातियों में राजनीतिक सहभागिता तथा महत्व का एहसास बढ़ा है, वे संदर्भ समूह, दबाव समूह के रूप में लामबंद हुए हैं, उनमें सामाजिक समता प्राप्त करने की प्रेरणा आई है, वहीं उनमें जातिगत विद्वेष भी उत्पन्न हुआ है जो जाति-संघर्ष या द्वंद के रूप में प्रतिफलित होता रहा है।

6. ***जातीय संगठनों की भूमिका (Role of Caste Organization)*** – वर्तमान समय में प्रायः सभी जातियों के राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय संगठन, क्रियाशील हैं, चाहे वह अखिल भारतीय ब्राह्मण महासभा हो या यादवों, कुर्मियों, भूमिहारों, राजपूतों या अन्य जातियों के संगठन। ये संगठन विभिन्न राजनीतिक दलों के साथ जुड़कर अन्य दूसरी जातियों के विरुद्ध न केवल वैचारिक दृष्टि से वरन् कभी-कभी हिंसात्मक रूपों में संघर्षशील होते रहते हैं। बिहार के सेनारी, बारा, छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा नरसंहार तथा राजस्थान के मीणा-गुर्जर संघर्ष इसके कुछ प्रमुख उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं।

अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में जाति-संघर्ष विभिन्न कारकों का समेकित परिणाम है, जो अपने जातिगत स्वार्थों की सिद्धि हेतु क्रियाशील हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)

स्पष्ट है कि व्यवस्था में आंतरिक संघर्ष किसी भी समाज के लिए सकारात्मक परिणाम उत्पन्न नहीं करता है, यह सिर्फ और सिर्फ त्रासदी का ही सूचक है। इसके परिणामों को हम सेनारी काण्ड, बाराकाण्ड, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड की नक्सली हिंसा और राजस्थान के मीणा-गुर्जर संघर्ष के रूप में देख सकते हैं। यद्यपि आधुनिक मूल्यों के प्रभाव व प्रसार से निश्चित रूप से निम्न सोपानिक प्रस्थितियों में रहने वाली जातियों का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास हुआ है। जातिगत संगठन आज दबाव समूह के रूप में विकसित होकर सरकार के साथ सामूहिक सौदेबाजी करने में सक्षम हुए हैं। क्षेत्रीय पार्टियों से जुड़ने के कारण उन्हें निश्चित ही पर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व का मौका मिला है तथापि जाति-संघर्ष जो जाति उन्नयन का दूसरा व नकारात्मक पक्ष है, वह जातिवाद, नक्सलवाद जैसे विघटनात्मक तत्वों को ही मजबूत कर रहा है, जो अन्तत: राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए समस्या बनते हैं। इस समस्या के आलोक में निम्न सुझाव अपेक्षित हैं–

1. जातीय असंतोष एवं द्वन्द्व की समाप्ति के लिए आवश्यक है की विभिन्न जातियों के बीच दूरी एवं वैमनस्य को समाप्त करने के उपाय किये जाएं इसके लिए अंतरजातीय विवाहों के प्रोत्साहन को सकारात्मक प्रयास माना जा सकता है।
2. जातीय संगठनों के विघटनात्मक कार्यकलापों पर प्रतिबंध लगाया जाय
3. जातिवादी तथा विभिन्न जातियों में वैमनस्य फैलाने वाली राजनीतिक गतिविधियों पर रोक लगाई जाय।

प्रत्येक जाति को यह अधिकार है कि वह अपना सर्वोन्मुखी विकास करे और उसे सभी सम्यक अवसर भी उपलब्ध होने चाहिए, किन्तु वह किसी अन्य जाति को नुकसान पहुँचाकर नहीं, वरन् संवैधानिक तरीके से और सरकार को भी इस दिशा में सकारात्मक कदम उठाने की जरूरत है।

भारत में जाति व्यवस्था : संभावित प्रश्न

1. जाति व्यवस्था की निरंतरता के स्वरूपों पर चर्चा कीजिये।
2. समकालीन समाज में जाति व्यवस्था कहां तक उपयोगी है? विवेचना कीजिये।
3. जाति एवं राजनीति के मध्य सह-सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिये।
4. जाति ने यदि राजनीति हेतु आधार तैयार किया है तो राजनीति ने जाति को नवजीवन प्रदान किया है। स्पष्ट कीजिये।
5. जाति व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र हेतु बाधक है या साधक, स्पष्ट कीजिये।
6. भारत में अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु किए गए प्रयासों की समीक्षा कीजिये और इस दिशा में अपने सुझाव दीजिये।
7. भारतीय समाज पर जातिवाद के प्रभावों की समीक्षा कीजिये और इसे दूर करने हेतु उपाय सुझाइए।
8. समकालीन भारत में जाति एक-साथ कमजोर एवं मजबूत दोनों हुई है। स्पष्ट कीजिए।
9. हाल के वर्षों में हरियाणा, तमिलनाडु एवं पश्चिम बंगाल आदि में जाति पंचायतों द्वारा परम्परा के संरक्षण के नाम पर दिए गए निर्णयों ने भारतीय लोकतंत्र के समक्ष प्रश्न चिह्न खड़ा किया है। चर्चा कीजिए।
10. खाप पंचायत एवं प्रतिष्ठा हत्या की समकालीन प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिये।
11. भारतीय राजनीति में जातिवाद पर टिप्पणी लिखिए।
12. जाति आधारित जनगणना के लाभों की चर्चा कीजिए।
13. 'भूमि जातियाँ पैदा करती है, मशीन वर्ग बनाती है।' स्पष्ट कीजिये।
14. 'राजनीति में जाति' एवं 'जाति में राजनीति' पर टिप्पणी कीजिये।
15. समकालीन भारत में जाति व्यवस्था निरन्तरता एवं परिवर्तन को परिलक्षित करती है। इस निरन्तरता एवं परिवर्तन के कारणों की चर्चा कीजिये।

✪✪✪✪✪